
अन्तर्वेदना

## श्रीराधा बाबा.....

**श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार** – 'महाभावकी जो अगले स्तरकी चीज है, जिसकी रूपरेखा गोस्वामी प्रभृति रसमर्मज्ञोंने भी नहीं खींची, वैसी चीज बाबामें व्यक्त हुई। इनका काष्ठ मौन असलमें इनका रससमुद्रमें निमज्जन है।'

**श्रीश्रीआनन्दमयी माँ** – देशमें जितना महात्मा जिंदा है, राधा बाबा की स्थिति सबसे ऊपर xxx। राधा बाबा प्रेम, भक्ति और सत्य का प्रतीक। भक्ति मार्ग की जीवंत मूर्ति। xxxx एक स्थिति ऐसी है, जहाँ ब्रह्म सिवाय और कुछ नहीं। द्वैत, अद्वैत, ज्ञान, भक्ति सब एक ही है। वही है, जो स्थिति राधा बाबा की है।

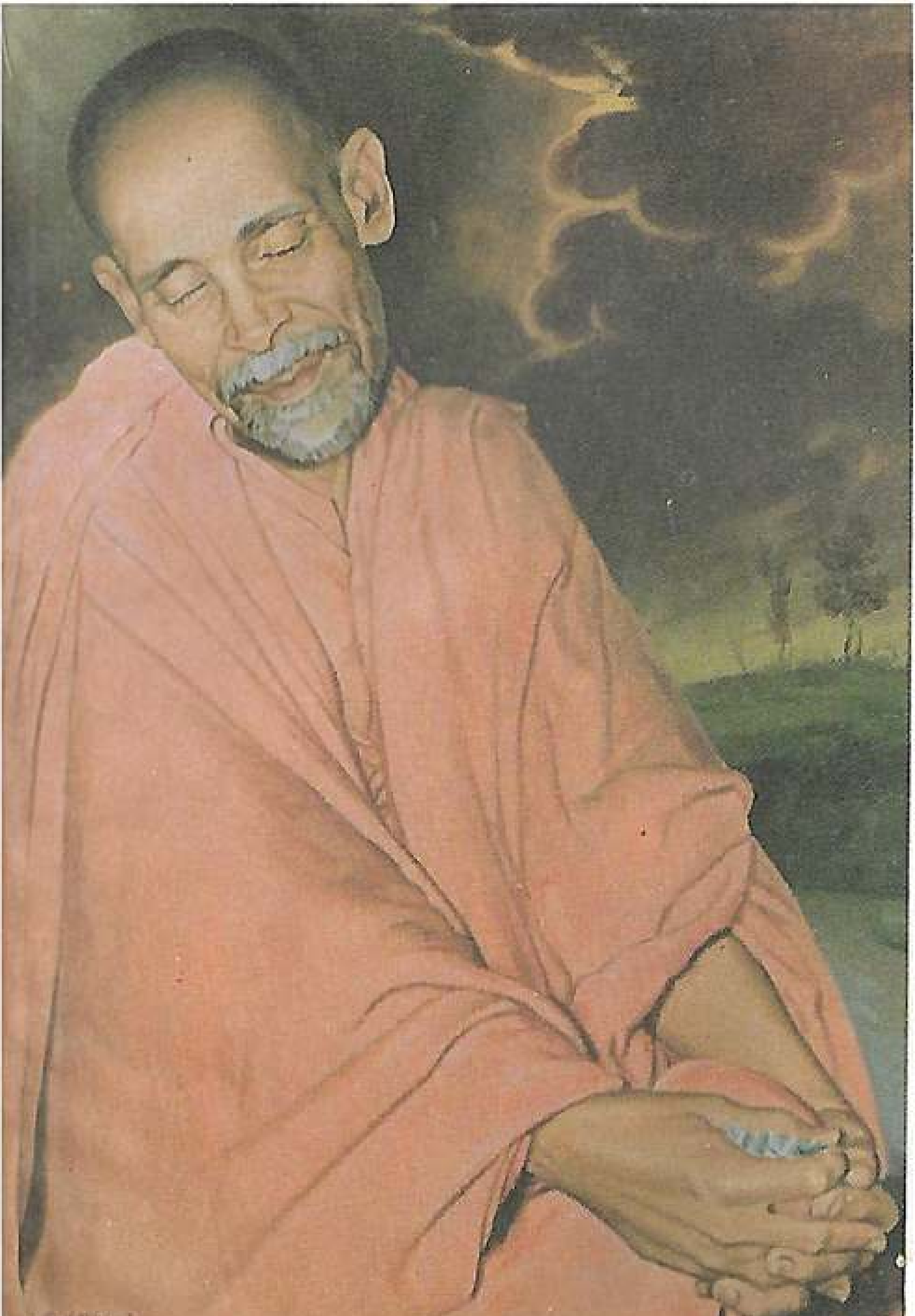
**श्रीश्रीयोगिराज ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा** – 'राधा बाबा मणि हैं, प्रकाश हैं, शोभा हैं। श्रीराधा बाबा मेरी आत्मा हैं।'

**पू. पंडित श्रीगयाप्रसादजी 'सचल गिरिराज गोवर्धन'** – 'जानेहु संत अनंत समाना' यह मंत्र सत्य ही प्रतीत होय है। श्रीप्राणनाथ की लीला देख के तथा सुन के बड़े विज्ञ लोग हूँ आश्चर्यमें पर जाय हैं कारण कि बिचारी बुद्धि की वहाँ तक गम्य नहीं एवमेव संतन की लीला हूँ श्रीभगवतलीला के समान ही विचार राज्य सों परे की बात बन जाय है बात स्पष्ट है सब ही शरीर तक ही सोच विचार सकें हैं यहाँ देहाध्यास रह ही नहीं ये संत श्री जीवनधनकी लीलामें निमग्न रहे हैं। सुकृतपुंज बाबा (श्रीश्रीराधा बाबा) के विषय में तो कुछ कहते ही नहीं बने 'मन समेत जेहि जान न बानी'।

**कविवर डा. श्रीहरिवंशराय 'बच्चन'** – ''राधाबाबाको अगर कोई एक-एक लक्षणपर परखे तो उनको सौ टंच खरा पाएगा। मुझे अगर एक विशेषणसे ही राधाबाबाको परिभाषित करना हो तो मैं उनको कहूँगा 'विशुद्ध संत'। तुलसीदासने भी संतके लिये यह विशिष्ट विशेषण शायद एक ही बार प्रयुक्त किया है:-

''संत विशुद्ध मिलहिं परि तेही।
राम कृपा करि चितवहिं जेही।।''

राम ने अगर कृपा कर मेरी ओर देखा तो उसका एकमात्र सबूत मेरे लिये यही है कि राधा बाबा मुझे मिले।''



महाभाव निमग्न पूज्य श्री राधा बाबा

**प्रकाशक :**

हनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समिति
हनुमानप्रसाद पोद्दार मार्ग,
गीतावाटिका, गोरखपुर - २७३ ००६ (उ० प्र०)

**प्रकाशन तिथि :**

सं० २०४९ वि० पौष शुक्ल ९ (२-१-१९९३)

**संस्करण :** ३०००

**न्योछावर :** पच्चीस रुपये

**आवरण एवं रेखाचित्र :**

डॉ० मनोज कुमार सिंह,
ललित एवं संगीत कला विभाग
गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

**मुद्रक :** मोती पेपर कनवर्टर्स
बेतिया राज हाऊस, गोरखपुर
दूरभाष : ३३४१८४

## त्वदीयं वस्तु.....

प्रेमकी तूलिकासे निष्ठाकी शुभ्र धवल भित्तीपर यदि त्याग, ज्ञान, क्षमा करुणा, कृपा, नियम, तप, संयम, सत्य, औदार्य, समर्पण, दैन्य आदि रंगोंसे किसी गम्भीर शान्त समुद्रको चित्रित किया जाय तो सम्भवतया वह शाखा-चन्द्र-न्यायसे पूज्य बाबा (राधा बाबा - स्वामी श्रीचक्रधरजी महाराज) के व्यक्त्तिवकी ओर संकेत कर सकता है।

प्रेमकी वे सरसती मूर्ति थे। संपर्कमें आया व्यक्ति उनके प्रेम-दानको अपने जीवनकी अमूल्य निधि मान हृदयमें सँजो लेता था। भीगे नेत्रोंके साथ एक हाथ चिबुकपर रख दूसरे हाथसे मस्तक सहला देना, व्यक्तिको आपाद मस्तक डूबा देता था उनकी स्नेह-सरितामें।

अचल, अडिग, निष्ठा थी पूज्य बाबाकी अपने परम प्रेष्ठ प्रियतमके प्रति। 'मैं' ही क्यों चिन्तित होऊँ, 'वे' भी तो देख रहे हैं मेरी आवश्यकताके बारेमें। मैं ही क्यों चिन्ता करूँ, उन्हें भी तो चिन्ता होगी मेरी। यदि उन्हें चिन्ता है तो फिर मेरा उस बारेमें चिन्तन क्यों होना चाहिये। मैं

एक

चिन्ता क्यों करूँ ? यदि प्रियतम आवश्यक समझेंगे तो अपने आप व्यवस्था हो जायेगी, नहीं तो कोई बात नहीं और पूज्य बाबाके प्रियतम विवश हो जाते थे उनकी इस एकांगी निष्ठाको देखकर ।

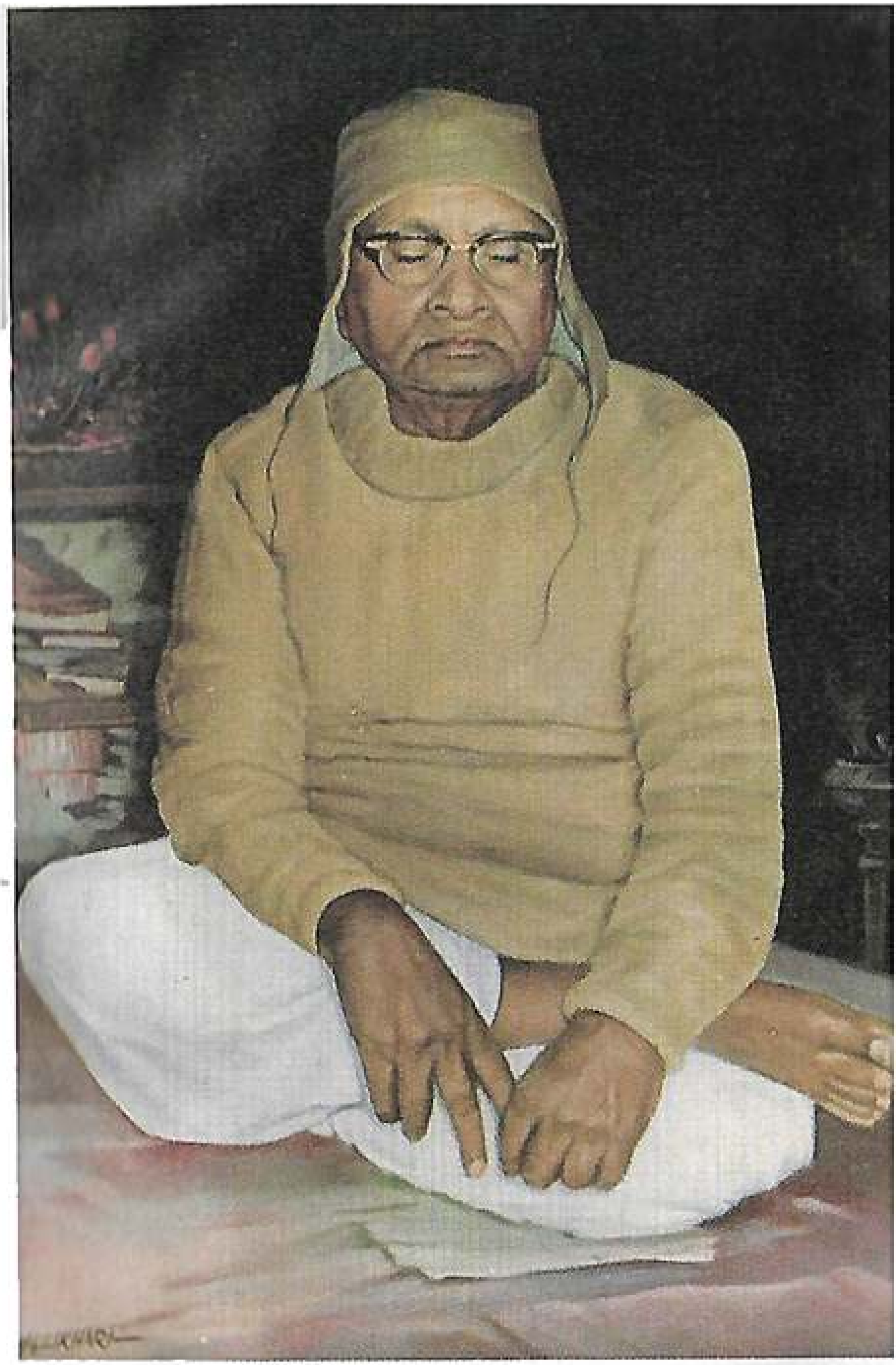
अँग्रेजोंके शासनके समयकी घटना है । पूज्य बाबा भी बंदी थे । देशप्रेमने पूज्य बाबाको भी पहुँचा ही दिया था बंदीगृहमें । उस जेलकी परम्परा थी कि प्रत्येक बंदीको पंक्तिबद्ध खड़ा कर दिया जाता था तथा जेलर महोदय बंदियोंको देखते हुए आगे बढ़ते जाते थे । पंक्तिमें जिसके सामनेसे जेलर महोदय निकलते थे, उस बंदीको अभिवादन करना पड़ता था उनका । जो अभिवादन कर देता था, वह तो बच जाता था और जिसने अभिवादन नहीं किया, उसपर उन अमानुषोंकी इतनी पाशविक मार पड़ती थी कि कई बंदियोंकी मृत्यु तक हो गई उस मारके कारण । युवक चक्रधर (पूज्य बाबा) के मनमें आया कि यह मस्तक तो इनके सामने झुकनेके लिये नहीं हैं, फिर किसी भयसे क्यों झुकाऊँ अपने मस्तकको । वैसे भी यह तो आराध्यके सामने झुकना चाहिये । इस अद्भुत निष्ठाने आराध्यको विवश

कर दिया आराधककी रक्षाके लिये । जब जेलर पूज्य बाबाके सामने पहुँचे, वे अभिवादन करनेके स्थानपर पीठकी ओर हथेलीमें हथेली दिये खड़े रहे और जेलर सामने खड़ा-खड़ा सीटी बजाता रहा । शायद प्रभु भी परीक्षा ले रहे थे अपने भक्तकी, पर वहाँ भी कोई न्यूनता नहीं थी । भक्तकी निष्ठा शिलखण्डकी तरह अडिग थी अपने स्थानपर । ऐसा लगता है कि प्रभुने जेलरके ऊपर कोई जादू कर दिया, जिससे उसको बंदी बाबा दिखलायी नहीं दे रहे थे अथवा उसको इस नियमकी विस्मृति हो गयी थी । जो हो, सबने देखा कि बन्दी बाबा बिना अभिवादन किये सामने खड़े हैं । चार-पाँच मिनट बाद जेलर आगे बढ़ गया । युवक चक्रधरकी निष्ठा उत्तरोत्तर गहरी होती चली गयी । उसके हृदयमें निष्ठाका एक छोर यदि पातालकी गहराइयोंको नाप रहा था तो दूसरा था नीले नभको पार करनेकी धुनमें ।

प्रियतमकी रुचि ही सर्वोपरि है, उस निमित्त कुछ भी करना सहज स्वभाव था पूज्य बाबाका । कोई प्रयास नहीं करना पड़ता था इसके लिये उन्हें । प्रियतमकी रुचिके

लिये जगत छोड़ना तो तुच्छ, प्रियतमका वियोग भी वरेण्य था। उनके जीवनके कण-कणमें त्यागकी पराकाष्ठाकी भावना जीवनके साथ इतनी अधिक घुल-मिल चुकी थी कि 'यह त्याग है' उनके ध्यानमें ही नहीं आता था। समस्त परिधियोंको तोड़ता हुआ त्याग भी प्रियतमकी पूजाका एक साधारण-सा उपकरण था पूज्य बाबाके लिये।

ज्ञानके रत्नाकर थे पूज्य बाबा और साथमें थी रत्नाकरके स्वभावकी अभिन्नता भी। क्या कभी क्षणभरके लिये भी यह सोचनेका समय निकाल पाता है रत्नाकर कि अपने आपमें कितने अमूल्य रत्नोंका भंडार सँजो रखा है उसने? गीतासे लेकर गोपीतत्त्वके आधार राधा-भावतक, वेदान्तसे लेकर 'प्रियतम' काव्यतक, 'सत्संग-सुधा' के मनोवैज्ञानिक विश्लेषणसे लेकर 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' तक, सरमदकी रुबाइयोंसे लेकर मेघ-मल्हारतक, पुराण-उपनिषदोंसे लेकर प्रिया-प्रियतमकी निभृतनिकुञ्जीय लीलाओंतक, इस प्रकार ये सारे दिव्य विविध रत्न-समूह अपने प्रियतम मयंकको रिझानेके लिये ही समर्पित है। यदि उसका प्रेष्ठ चन्द्र उसे शान्त, गंभीर, स्थिर, समाहित रूपमें



पूज्य भाईजी श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार

देखना चाहे तो वैसे और यदि सागरके जीवनाधारको उसकी उत्ताल तरंगों, उफनते ज्वारको देखना अभीष्ट हो तो अपने आपमें आमूल परिवर्तन करनेमें समय नहीं लगता जलधिको। प्राणेशकी रुचि ही मेरी रुचि है। मेरे पास क्या है, इसे देखनेका अवकाश कहाँ है उसके पास ?

उपर्युक्त सारी ज्योतिर्मयी उज्जवल गरिमा थी उस हीरक खण्डकी, जो अपने प्रत्येक द्वारसे प्रकाश-ही-प्रकाश दे रहा था, परन्तु प्रस्तुत प्रकाशित सामग्री तो उस हीरक खण्डकी देन है, जो अपने आपको एक ही द्वारसे उद्भासित कर पा रहा था। युवक चक्रधर वह हीरक खण्ड था, जो परम पारखी पूज्यपाद श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार जैसे जौहरीके हाथोंमें पड़नेसे पहलेकी अनगढ़ स्थितिमें था। वेदान्त निष्ठासे वह बन गया चमकता कनक-पात्र। पूज्यपाद श्रीपोद्दारजी जैसे रस-सिद्ध-संतने अपने ब्रजभाव रूपी सिंहनीके दूधसे लबालब भर दिया उसे। पूज्यपादको पात्रताका निर्माण नहीं करना पड़ा, वह तो थी ही। बस, उन्हें तो उड़ेलना भर था इस अनुपम दानको। लेनेकी असीम शक्ति थी उस अप्रतिम पात्रके पास।

प्रस्तुत पत्र युवक चक्रधरने दीनबन्धु अशरण-शरणको लिखे थे पौने दो वर्षतक, संन्याससे पूर्व १-१-१९३४ से १४-१०-१९३५ तक। प्रस्तुत सामग्री अपने सहोदर अग्रजको सौंपनेके पूर्व उसपर अंकित कर दिया था- "इसे चक्रधरके देहत्यागके पूर्व न खोला जाए"। संन्यासके ठीक ५७ वर्ष बीत जानेपर १३ अक्टूबर १९९२ को पूज्य बाबाने अपनी इह-लीला संवरण की। पूज्य बाबाकी रुचिके अनुसार उसके बाद ही उसे खोला गया। बाबाकी अन्तर्वेदनाकी साक्षी यह अमूल्य थाती अब हमारे हाथोंमें है। अध्यात्म-पथके पथिकोंके लिये प्रकाश-स्तम्भकी भाँति उपयोगी होगी यह सामग्री, जो आलोकित कर देगी पथ एवं लक्ष्य दोनोंको ही। इसी भावनासे इसे पुस्तकाकार किया जा रहा है।

दु:खालय संसारके विविध दु:खोंको सँजोये युवक चक्रधरने अपनी सारी व्यथाको एकत्रित करके एक गहरी वेदनामें अपने आपको डुबा लिया। वह अन्तर्वेदना थी अपने प्रियतमके अदर्शनकी। अपनी टेकके अनुसार जिस भी याचकने स्वयं प्रभुको ही याचनाकी वस्तु बना लिया, वह कभी खाली हाथ नहीं लौटता उसके द्वारसे, क्योंकि इस

याचनाके साथ कोई बिरला ही याचक जाता है दाताके पास । दाताको भी ऐसे याचककी प्रतीक्षा रहती है, क्योंकि भाँति-भाँतिकी याचनाके लिये तो लम्बी कतार लगी रहती है, पर उस याचनाका याचक तो उसके लिये भी बिरला ही होता है ।

बाबा ! ''मेरे रोम-रोमका प्यार तुम्हारे साथ है, तुम मुझे भले ही भूल जाओ, मैं तुम्हें कभी नहीं भूल सकता''— आपका यह आशीर्वाद ही शेष जीवनका सम्बल है । ११-१०-१९९२ को भी इसी आशीर्वादसे अभिषिक्त किया था । अब 'चन्दू भैया' कहकर प्यारसे सिरपर फिरने वाले हाथ पकड़में नहीं आ रहे हैं; वे मधुस्यन्दी स्वर कानमें रस नहीं घोल रहे हैं; अदर्शनकी वेदनासे शिथिल पग चलनेमें लड़खड़ाने लगे हैं; मन भारी है, पर आपकी 'अन्तर्वेदना' ने पुन: चलने के लिये विवश-सा कर दिया है । आपकी कृति आपको ही समर्पित है —

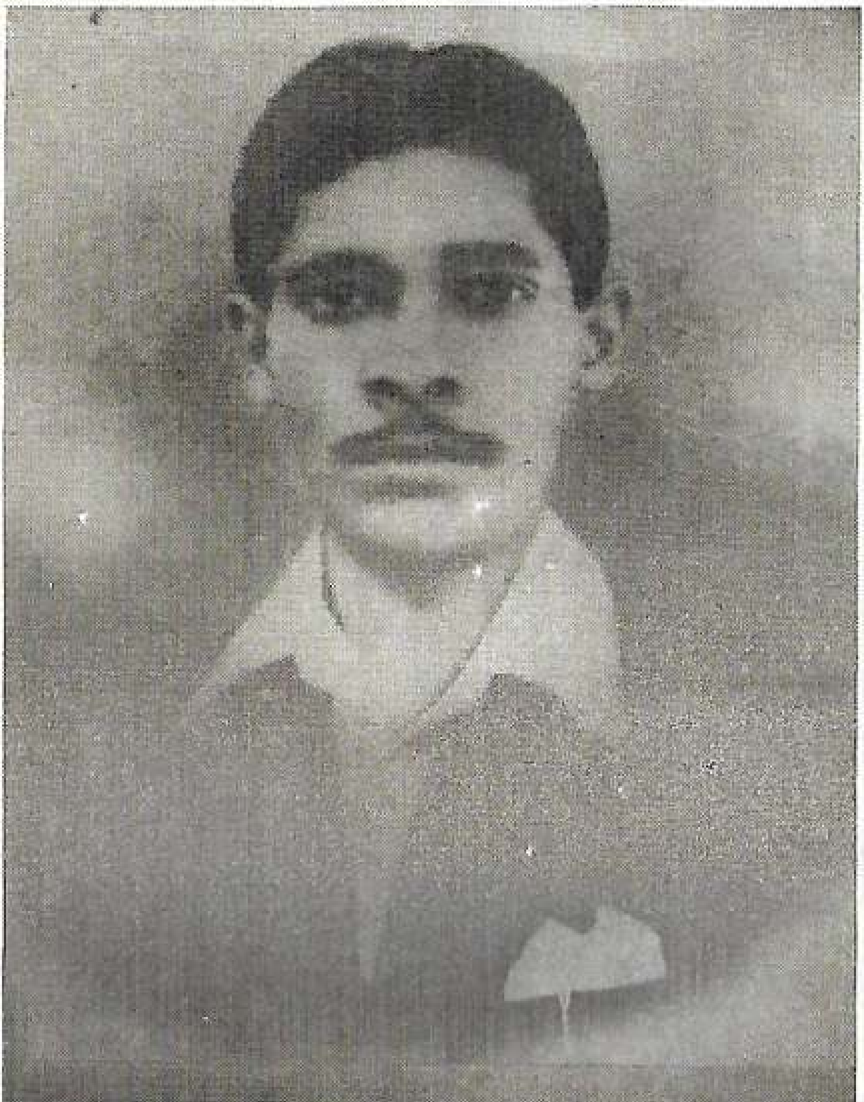
त्वदीयं वस्तु गोविन्द, तुभ्यमेव समर्पये ।
तेन त्वदङ्घ्रिकमले, रतिं मे यच्छ शाश्वतीम् ।

तुम्हारा ही,
चन्द्रकान्त फोगला

# यह विदा लो

जानता हूँ दीप मन्दिर में अकेला जल रहा है ।
प्राण के इन आँसुओं का एक मेला चल रहा है ।।
पर अमा का अन्त होगा प्रिय हमें फिर मिल सकेंगे ।
जिन्दगी के सुमन मुरझ फिर सुनहले खिल सकेंगे ।।
जगेगा सुन्दर सलौना सपन जग के पार प्रियतम ।
जब मिटेगा यह घरौंदा मृत्तिका-संसार प्रियतम ।।
प्यार करती रसमयी मन-पुष्प-पूर्णा संविदा लो ।
भक्त की गुरुदेव अब तुम अश्रु करुणा यह विदा लो ।।

— विश्वम्भरशरण



युवक : श्रीचक्रधर मिश्र

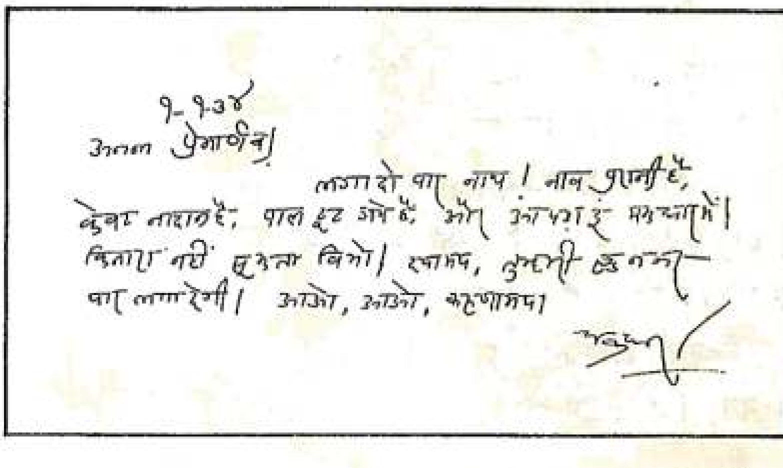
दिनांक १.१.३४

अनन्त प्रेमार्णव !

लगा दो पार नाथ ! नाव पुरानी है, केवट नादान है, पाल टूट गये हैं और आ पड़ा हूँ मझधारमें। किनारा नहीं सूझता विभो ! दयामय ! तुम्हारी एक नजर पार लगा देगी। आओ, आओ, करुणामय !

तुम्हारा ही





१.१.३४

अनन्त प्रेमार्णव!

लगा दो पार नाथ! नाव पुरानी है,
केवट नादान है, पाल टूट गये हैं, और आ पड़ा हूँ मझधारमें।
किनारा नहीं सूझता विभो! दयामय, तुम्हारी एक नजर
पार लगा देगी। आओ, आओ, करुणामय।

दिनांक २.१.३४

दयानिधि !

मैं क्या हूँ, कैसा हूँ, इसे तुम्हारे सिवा और कोई नहीं जानता। जगदाधार ! धर्मी हूँ या अधर्मी, चरित्रवान हूँ या दुश्चरित्र, उच्च हूँ या नीच, महान हूँ या अधम, जैसा भी हूँ, तुमसे छिपा नहीं है, अतः सर्वेश ! इसका फैसला तुमपर ही छोड़ता हूँ, किन्तु अन्तर्यामी ! की है मैंने एक अनधिकार चेष्टा । नाथ ! मैंने उन लोगोंको अपने अन्त:करणसे क्षमादान दिया है । पता नहीं, भगवन् ! इसका अधिकार हमें था या नहीं, क्यों कि उन लोगोंमें भी तुम्हारा निवास है, पर भगवन् ! क्या तुम्हारी अनुभूतिमें लीन पुरुष ऐसा पापमय कलुषित और मिथ्या प्रचार कर सकता है ? नहीं मायामय ! तुम्हारी दिव्य ज्योतिका प्रवाह हृदयस्थित रहनेपर भी उन लोगोंने उसका अनुभव नहीं किया। शैतानकी मायाने उन्हें इस दिव्य प्रसादसे वंचित कर दिया। उसके तिमिरमय आवरणको ही उनलोगोंने हृदयका सच्चा प्रकाश माना है। जो कुछ भी हो, विभो ! मैंने उन्हें क्षमा कर दिया है। वरद ! मेरे हृदयमें बलका संचार कर दो, जिससे क्षमाका यह भाव चिरस्थायी हो। एक बात और है नाथ ! सुन लो इस दीनकी पुकार नाथ ! भगवन् ! क्या

होगा उनके इस पापका परिणाम ? ........ सर्वव्यापी ! देख लो मेरा हृदय । चाहता हूँ विश्वेश ! एक बारके लिये तुम उन्हें सुबुद्धि दे दो, जिससे समझ जाँय वे इसका परिणाम, देख लें कंटकाकीर्ण पथको और तब नाथ ! शायद छोड़ दें। करुणामय ! तुमने मेरी पुकार बराबर ही सुनी है, सदा मुझ अधमको तुमने शरणमें रखा है । प्रार्थना है विभो ! विनय करता हूँ दयामय ! उन्हें सुबुद्धि दे दो, उनकी मोह-तन्द्रा टूट जाय, समझ जाँय अपने नारकीय जीवनका इतिहास ।

तुम्हारा ही



दिनांक ३.१.३४

भावनामय !

भवसागरकी तरल तरंगोंने मुझे मृतप्राय बना डाला है । इसकी उद्दण्ड हिलोरोंसे मैं तंग आ गया हूँ । जीवन ज्योति लुप्त हो गयी है । सहारेके लिये हाथ पसारनेपर लोग ठुकरा देते हैं । हृदय खीरा नहीं है, जिसे दयामय ! उन्हें मैं फाड़कर दिखा सकूँ । संसार मुझसे घृणा करता है, पर तुम तो अनाथोंके नाथ हो । विभो ! सर्वेश ! मेरी रत्ती - रत्तीका तुम्हें ज्ञान है । बिखेर दे भक्तभयहारी ! ऐसी चाँदनी, जिसमें मैं देख सकूँ अपना पथ । अन्तर्दाहकी शांति तुम्हारे सिवा और कौन दे सकता है ? हृदय जल रहा है, अस्थिमात्र अवशेष है, कुछ दिनोंके बाद यह अस्थि-पिंजर भी, हृदयकी उस विषम ज्वालाकी लपटमें पड़कर भस्मसात हो जायगा । हो जाय, इसका भय नहीं । केवल विनय है नाथ ! मुझे अपने चरणोंसे विलग न करना । मेरे एक मात्र आधारको हमसे न छीनना । न छीनना दयामय ! न छीनना । भिक्षास्वरूप अपना चरण मुझे दे दो । अपनी टेक मत छोड़ो करुणानिधि ! और एकबारके लिए ही चमका दो अपनी दिव्य ज्योति ।

विश्वनियन्ता !

तुम्हींने संसारकी रचना की, तुम्हीं इसके पालकस्वरूप हो, तुम्हीं इसका अन्त करोगे। मेरा जन्म भी इस संसारमें तुम्हारे आदेशका ही फलस्वरूप है। समझ नहीं पाता अगोचर ! मुझे किन पापोंका यह दण्ड मिल रहा है। कभी सोचता हूँ कि यह तुम्हारी लीला है। अपने भक्तोंको दु:खी देखनेमें ही तुम्हें आनन्द आता है, पर लीलामय ! मुझ-सा अधम तुम्हारा भक्त कैसे हो सकता है। मेरा सौभाग्य कहाँ, जो एक क्षणके लिये भी अपनेको तुम्हारा अनुयायी कह सकता ? दयामय, ! बता दो हमारे लिये इतनी बड़ी कसौटी क्यों ? नहीं पार लग सकता स्वामिन् ! तुम्हारी दयाका भरोसा है। दयाका एक कण दे दो; दे दो मुझ दीन अभागेको अपनी करुणाका एक ठीकरा, फिर संसारकी सब बाधाओंको पार कर जायगा।

विभो ! तुम जानते हो, मैं क्या करता हूँ। विश्वेश ! क्या वह पाप है ? क्या उसीका दण्ड इतना भयानक है ? नहीं, अन्तर्यामी ! मेरा हृदय देखो और देखो उन लोगोंका हृदय। तुम जानकर भी क्यों अज्ञान बनते हो सर्वज्ञ ! किन्तु दयामय ज्ञात होता है, तुम इसे नहीं चाहते और इसलिये मैं इसे छोड़नेका प्रयत्न करता हूँ। विभो !

बल दे दो, जिससे मैं अपना पूर्ण रूपसे नियंत्रण कर सकूँ। सच बतला दो नाथ ! यदि वह दोष है तो मैं क्योंकर छूट सकता हूँ। कोशिश करता हूँ नाथ ! पर सफलता नहीं मिलती। सर्वव्यापी ! तुम इसे प्रतिदिन देखते हो और हमारी असमर्थतापर हँसते हो। नाथ ! पन्द्रह दिन पहलेतक मैं इसे दोष नहीं समझता। नाथ ! उसमें आनन्दका अनुभव करता था। आज भी नाथ ! प्रवृत्ति उसीकी ओर बढ़ती है, पर नाथ ! मालूम पड़ता है वह बड़ा भारी पाप है। तुमने हमपर दया की है, उससे हटानेका तुमने अच्छा उपाय सोचा है, पर नाथ ! मैं इस दण्डको सहनेमें असमर्थ हूँ, असहाय हूँ। आओ, एक बार आओ, दण्ड दिया है तो बल भी दो, जिससे पार कर सकूँ इस तिमिराच्छन्न विपत्तिसमूहको।

वरद ! एक बात और। क्षमाका भाव मुझमें स्थायी कर दो। मेरे हृदयमें उन लोगोंके प्रति घृणाके बदले प्रेमकी धारा बह जाय। मैं उनकी उन्नति चाहता हूँ। तुम दया करो। उनकी ओरसे प्रार्थना करता हूँ कि उन लोगोंको शैतानके पंजेसे मुक्त कर दो। बड़ी बुरी तरह फँसे हैं। नाथ ! हमसे भी अधिक शोचनीय दशा उन लोगोंकी है। नाथ ! तुम्हारे सिवा और कोई उन्हें नहीं पार कर सकता।

शरणागतपाल ! आया हूँ शरणमें, सुन लो मेरी विनय। तोड़ दो उनकी अज्ञान तंद्रा। समझा दो उन्हें उनकी वास्तविक स्थिति और नाथ ! मैं गिड़गिड़ाकर रोकर अंत:करणसे पुकारता हूँ नाथ ! कोई उपाय करो .................. अन्तर्यामी ! हृदयधन ! आओ, आओ, मेरी इस ज्वालाका अन्त करो।



तुम्हारा ही

दिनांक ४.१.३४

ज्ञानमय !

याद नहीं कभी मैंने शरीर–सुखका अनुभव किया। यदि हो भी तो वह इतना कम है, जो नगण्य है, दिन–रात औषधि सेवन कर बीस वर्षकी आयु शेष कर चुका हूँ। मानसिक आनन्द भी जो था , उसे तुमने छीन लिया। तुम्हारा विधान मंगलमय है। और क्या जानूँ विभो !

अभी देखा है आँखोंके सामने नाच रहा है राम राम सत्य है .................. और सबकी यही गति है। हम भी इस नियमके अनुसार कुछ दिनोंके बाद चल बसेंगे। विभो ! रखना अपने चरणोंमें मेरे लिये किंचित् स्थान। यह अभागा सारा जीवन दुःखमें ही बिताकर अन्तमें तुम्हारे चरणमें ही शान्ति प्राप्तिकी आशा रखता है। इस आशाको न तोड़ना सर्वेश !

क्या करूँ दयामय ! हृदयमें अब बल नहीं है। संसारके क्षुब्ध झकोरोंसे जर्जर हो गया हूँ। शरीर निष्प्राण हो रहा है। तुम्हारे सामने हृदय है। देख लो इसे और .................. क्या कहूँ ? सर्वज्ञ ! तुमसे क्या छिपा है ?

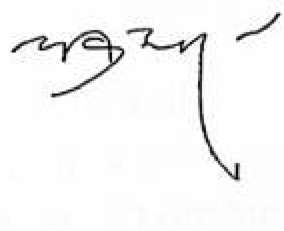
जा रहा हूँ विभो ........................ ! सफलता

तुम्हारी दयापर निर्भर है करुणार्णव ! दे देना भिक्षास्वरूप । लग जायेगा पार यह अभागा । विभो ! और भी प्रार्थना है । क्यों कष्ट दे रहे हो उस साधुको ! जीवनके छल–प्रपञ्चसे वह दूर है । उसमें वैसी कलुषित प्रवृत्तियोंका लेशमात्र भी नहीं है । तुम्हारे चरणोंमें अर्पण कर रहा हूँ । उसकी अभिलाषाएँ तुम्हीं पूरी कर सकोगे ।

विभो ! कितना विश्वास था उसपर । उसने उस विश्वासके मूलपर कुठाराघात की है । हृदय कट गया है प्रणतपाल ! दयाके एक कणका दान कर दो, फिर नाथ ! घाव भर जायेगा ।

पुकारता हूँ नाथ ! तुमने महान आत्माओंकी पुकार सुनी है, इस अधमकी भी पुकार सुन लो । डरता हूँ नाथ..............

तुम्हारा ही



दिनांक ५.१.३४

करुणामय !

किन भावोंको लेकर तुम्हारी अर्चना करूँ। अशांत हृदयमें भाव कहाँ ? बहा दो शांतिकी धारा मेरे हृदयमें। दु:खसे कातर हृदयमें शांतिका संचार कर दो।

करुणानिधि !

डूब रहा हूँ। किनारा नहीं देख पड़ता भगवन् ! तृष्णाके अगम अगाध आर्णवमें पड़कर लहरोंकी थपेड़ोंका सामना कर रहा हूँ। कितनी देर कर सकूँगा ? भगवन् ! दया करो मेरी हीनावस्थापर। प्रणतपाल ! अपनी करुणाकी कोरकी ही नाव बना दो और विभो ! खे दो किनारेतक। तुम्हारे सिवा मेरा और कोई नहीं है।

अज्ञानके अंधकारमें पड़ा हूँ। तुम्हारी ज्योतिका संचय मैंने आजतक किया नहीं, पर अधमउधारण ! अंतमें कातर होकर आया हूँ तुम्हारी शरणमें। ले लो मुझे चरणोंमें सर्वेश !

मिटा दो मेरे हृदयसे आसक्तिका भाव, छुड़ा दे मेरी चिंता, दिखा दे वह सुखमय पथ। सब कुछ करता हुआ भी आसक्तिसे रहित रहूँ, यही भिक्षा दे दो अशरणशरण ! विभो!

जो कुछ करता हूँ, तुम्हारा है । अपने नित्यके प्रत्येक कामोंको तुम्हारे श्रीचरणोंमें चढ़ा रहा हूँ । भगवन् .......................... ! बड़ा ही टेढ़ा है । बल दो, साहस दो, दयामय ! मेरा यह भाव चिरस्थायी रहे करुणानिधि ! खोल दो उस रास्तेकी किवाड़ विभो ! जिसमें जाकर तुममें मिल जाऊँ ।

हृदयमें विषम ज्वाला जल रही है । घृतकी आहुति पड़ जाती है विभो ! इसमें, जब देखता हूँ उन लोगोंकी तरफ । भगवन् ! मैंने क्षमा कर दिया है, यह भाव चंचल हो जाता है । दया करो ........... उबार लो मुझे इस गह्वरसे । बहा दो प्रेमकी धारा मेरे हृदयमें उनके लिये, जिसमें बह जाये घृणा विश्वेश !

बढ़ रहा हूँ, तुम्हारा ही भरोसा है, भूलना नहीं समदर्शी !

तुम्हारा ही

दिनांक ६.१.३४

दीनबन्धो !

कबसे पुकार रहा हूँ अनाथोंके नाथ ! सुन लो मेरी विनय । आर्तहरण ! बड़े कष्टमें हूँ । संसारकी नजरोंमें हँसीका पात्र हो रहा हूँ । कोई सहायक नहीं है दयामय ! सिवा तुम्हारे मेरे कष्टोंको कोई नहीं जानता । नाथ ! बहुत सता चुके । अब दया करो । उबार लो पापमय भवसागरसे । तुमपर भरोसा रखकर किसीने कष्ट नहीं पाया । मैं हतभागा अधम हूँ । तुमपर मेरा विश्वास स्थिर नहीं है, इसीलिए कष्ट पा रहा हूँ । जो हो, नाथ ! शरणमें आये की रक्षा करते हो । अन्तर्यामी ! तुम जानते हो मेरे हृदयकी अवस्था । कहाँ जाऊँ विभो ? नहीं सूझता । कर्णधार ! एकमात्र तुमपर टिकी आशाकी हत्या न करना । जितना भी अधम होऊँ, हूँ तेरा ही ।

डूब रहा हूँ जगदीश ! उबार लो । गिद्ध, अजामिल, गणिका, गजकी पुकार तुमने सुनी थी, सुन लो मेरी पुकार मेरे हृदयधन !

और कितना जलाओगे नटवर ! आओ करुणेश ! बाँह पकड़ लो । लगा दो पार कर्णधार !

मैं उन लोगोंको क्षमा करता हूँ। महिमामय ! अब क्या कर सकता हूँ ? इससे बढ़कर भी यदि किसी चीजकी आवश्यकता हो तो बोलो, दिखला दो, बता दो और क्या करूँ ? विभो ! बल नहीं है, साहस नहीं है। अब अधिक दुःख मत दो लीलामय ! ले लो अपनी शरणमें, दे दो अपने चरणमें स्थान। लीलामय ! मेरा कष्ट तुमसे छिपा नहीं है। क्या कहूँ ................. तुम्हारा विधान मंगलमय है। विनय है उनके आँखोंका पर्दा हटा दो।

तुम्हारा ही

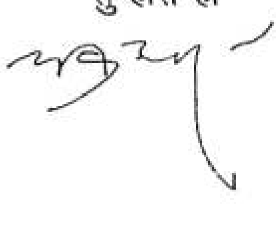


दिनांक ७.१.३४

नटवर !

अपने जनोंको रुलानेमें ही तुम्हें आनन्द आता है। हमें भी रुला रहे हो। जितना ही तुमसे मिलनेका परिश्रम करता हूँ, देखता हूँ विभो ! तुम हमसे हट जाते हो। नाथ ! चंचल इन्द्रियाँ तुमसे मुझे दूर ले जा रही हैं। बचाओ नाथ ! बचाओ ! तुम्हारे सिवा कोई सहायक नहीं है। भर दो मेरे इस क्षुद्र हृदयको विशुद्ध भावोंसे। छुड़ा दो फलकी चिंता। आरूढ़ कर दो हमें अपने कर्तव्य–पथपर सर्वेश ! हृदय तुम्हारा है, तुमपर छोड़ दिया है। तुम्हारे सिवा और कोई नहीं है प्रणतपाल ! जगत असार है। सार है इसमें तुमको पहचानना और फिर तुम्हारी .....................का अब अवलम्बन करना। हटा दो विभो ! हमारे हृदयसे उन कलुषित प्रवृत्तियोंको। मैंने उन लोगोंको क्षमा कर दिया है। प्रार्थना भी करता हूँ। दृढ़ कर दे मेरा विश्वास ................... प्रभो ! तुम्हारा विधान मंगलमय है। अन्तर्यामी ! इस दुखियाको न भूलना।

तुम्हारा ही



दिनांक ८.१.३४

अगोचर !

तुम्हारे लिये ही सम्बोधनका उपयोग कुछ करते हैं। लीलामय ! पर अपने कौलके अनुसार मेरे सामने आओ और उबार लो इस डूबते हुए दीनको महिमामय ! सभी जगह तुमने हमारी रक्षा की है। समय आ गया है करुणानिधि ! तुम सर्वज्ञ हो ............... । आओ, आओ हे कर्णधार ! तुम्हारी चरणरजकी नौका बनाकर मैं पार उतर जाऊँ। संसारसे ठुकरा दिया गया हूँ। जिनपर मेरा विश्वास था ............. उन लोगोंको शैतानने मोहके आवरणमें छिपा रखा है। तुम्हारी अखण्ड ज्योतिसे वे हीन हो गये हैं। अब मेरे पास कुछ नहीं है। जन्मका दरिद्र दुखी था, आज भी वैसा हूँ। तुम्हारी करुणाका आधार ही मेरे लिये सर्वस्व था, आज भी वही है मेरे लिये। आज भी मुझे केवल तुम्हारी दयाका भरोसा रह गया है।

करुणानिधि ! सर्वज्ञ ! कल तुमने भी अवश्य सुना होगा। दोष उनका नहीं है, विभो ! मेरा है। जीवनमें अकथ पापकी कमाईकि लिये दायी मैं हूँ, पर नाथ ! ऐसे वज्रपातसे मन चंचल हो उठता है। अनाथ हूँ, मैं दरिद्र हूँ, जो कुछ भी हूँ, तुम्हारा हूँ। केवल सर्वज्ञ ! तुम्हीं जानते हो, कितना

कष्टमें हूँ, विभो ! देखकर भी क्यों अनजान बनते हो ! फिर वही बात - 'आरत के चित रहहिं न चेतू' । अगर कष्ट दिया विभो ! तो अपना दास समझकर उसे सहर्ष सहनेकी भी शक्ति दो । अगर छीन लिया ................. तो अपना चरण दो । उसके सहारे मैं लड़ सकूँगा भवसागरके उन उद्दण्ड थपेड़ोंसे । तुम्हारे चरणकी सहायता मिलनेपर संसारकी कोई शक्ति हमें अपने निर्दिष्ट पथसे वंचित नहीं कर सकती । आवश्यकता है केवल तुम्हारी दयाकी ।

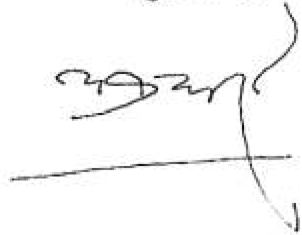
जो कुछ भी करता हूँ मधुसूदन ! तुम्हें अर्पण करता हूँ । स्वीकार करो इस क्षुद्र अधमके दानको । लालसा तुम्हारे चरणोंकी है, और किसी चीजकी नहीं । जो हो, तुम्हारा विधान मंगलमय है, मैं बस इतना जानता हूँ । मैं जानता हूँ, तुम गरीबोंसे अलग नहीं रहते। मुझे विश्वास है कि तुम मुझे एक क्षणके लिये भी न भूलते हो । मैं देखता हूँ, तुम्हारी प्रतिमूर्ति उन लोगोंमें भी । तुम हँसते हो मेरी दुर्दशापर, यह जानता हूँ ............... यह बनावटी है । तुम मुझे शैतानके क्रूर पंजोंसे ............. हटा दोगे, इसका मुझे पूर्ण विश्वास है । तुम्हारी दयासे मैं अखण्ड शान्ति और आनन्दको प्राप्त करूँगा, इसमें किंचित् भी संदेहकी जगह नहीं है । मैं तुम्हारा हूँ, तुम हमारे हो, इसे कोई नहीं हटा सकेगा । तुम

प्रति क्षण हमारे पास रहते हो, नहीं तो डूब गया होता । मेरे लिये तुमने कसौटीका आयोजन किया है । तुमने हमारे लिये वह अग्नि जलायी है, जिसमें जलकर मैं कुंदन बन जाऊँगा । नाव टूट गयी है, पाल कट गये हैं, संसारमें कोई भी सहायक नहीं, बीच भवसागरमें आ गिरा हूँ । जलजन्तु खानेको बैठे हैं, पर कोई परवाह नहीं ।

अति निकट विकट संकट का थट सिर पर हो ।
परवाह किसे जब रक्षक जगदीश्वर हो ॥

नाथ, मैं जानता हूँ तुम अनाथोंको नहीं भूलते । उनकी परीक्षा लेते हो, पर जगदीश्वर ! परीक्षा बड़ी कठिन है । प्रश्न किया है तुमने तो जवाब दे सकोगे तुम ही । मुझे बना लो केवल सामान मात्र । मंगलमय ! अपनी ज्योति हमसे अलग न करना ।

तुम्हारा ही



दिनांक ९.१.३४

जीवनधन प्रियतम !

नहीं जानता विभो ! तुम्हें किस तरह पुकारूँ। इतना जानता हूँ कि तुम दुखियोंका करुण क्रन्दन सुनते हो। इतना जानता हूँ कि दीनोंके सहायक तुम हो। सताये हुए पुरुषोंपर तुम्हारा प्रेम अधिक है। यह भी कहा जा सकता है कि अपने जनोंको खूब ही सताते हो, उन्हें खूब रुलाते हो, उनके करुण क्रन्दनमें ही नटवर ! तुम आह्लादित हो उठते हो। क्यों ? विभो ! नहीं बता सकता। तुमने बताया है, महान आत्माओंने यही कहा है कि तुम अनन्त हो, तुम्हारी थाह किसीने न लगायी। हाँ, जिसने तुम्हारे विधानको मंगलमय समझा, वही पार लगा। केवल वही डूबनेसे बचा।

अनाथोंके नाथ ! बड़े फेरमें हूँ और तुम हँस रहे हो ? तुम्हारी मुस्कानका आभास मुझे अवश्य मिलता है। जहाँ देखता हूँ, तुम हँस रहे हो। मैंने देखा, उनमें भी तुम उसी तरह हँस रहे थे। तुम्हारी हँसी नाथ ! मैंने उनमें भी उसी तरह लक्ष्य किया। देखता हूँ, शैताननने उन्हें अंधा कर दिया। बचाओ नाथ ! उन लोगोंको। सुन लो मेरी विनय।

नाथ बड़ा डर लगता है। शैतान प्रतिक्षण मेरे पास

आता है नाथ ! मैं उसकी ओर आकृष्ट हो जाता हूँ। नाथ ! दयामय ! रक्षा करो हमारी उसके प्रलोभनोंसे । नाथ ! बराबर ही ताकमें है वह । तुम अगर सहायता न करोगे तो वह पकड़ लेगा । अशरणशरण ! मैं तुम्हारी दयाके बिना उसके चंगुलसे नहीं बच सकता । मैं शैतानसे जितना ही भाग रहा हूँ, वह मुझे उतना ही पकड़ना चाहता है । बड़ा भयानक है उसका दासत्व । वह मुझे बीचमें ले जाकर डुबो देगा । केवल तुम्हारे भरोसे मैंने उससे लड़ाई ली है । मैं कहता हूँ नाथ ! उसे मार भगाऊँगा । वह कहता है कि वह मुझे ले मरेगा । विश्वेश ! न्याय करो । तुम्हारे शरणागतको शैतानका भय नहीं है, इस कौलको याद करो और पकड़ लो मेरी बाँह ।

ज्ञानमय सर्वज्ञ ! शैतानने मुझे तुमसे अलग करनेकी चेष्टा हजारों बार की है । विभो ! मैं बराबर ही तुमसे हट जाता हूँ । लाख प्रयत्न करनेपर भी मैं तुमको भूल बैठता हूँ । तुमको याद भी नहीं करता । फिर ठोकरें लगती हैं, तुम्हारी ओर भागता हूँ । तुम मेरी ओर दौड़ पड़ते हो, रख लेते हो मुझे । इस बार भी वही हुआ था । न जाने विभो ! भविष्यमें क्या होगा । मैं पड़ गया उसके प्रलोभनोंमें । बहता चला जा रहा था अनन्त भवसागरकी

बीच धाराकी ओर, जहाँसे निकलना असम्भव था। तुमने ठीक उसी समय मुझे ठोकर लगा दी। विभो ! इस बार भी तुम्हारी ओर दौड़ रहा हूँ। शैतान चारों ओरसे घेरे खड़ा है, निकलने नहीं दे रहा है। आओ, प्रणतपाल ! आर्तहरण ! बचा लो, उबार लो। विभो ! तुम मुझे हताश न करोगे। मैं तुम्हारी पवित्र मुस्कानकी आभाका दर्शन कर रहा हूँ। तुम मुझसे दूर नहीं हो, पर मैं अधम तुम्हें अभी नहीं पा सकता। पाऊँगा विश्वेश ! जब तुम स्वयं हमारी ओर देखोगे। देखते तो बराबर हो, पर इस बार तुमने हमारे लिये बड़े भारी दण्डका आयोजन किया है। इस बार शायद तुम मुझे तिल–तिलकर जलाओगे। जो कुछ करना विभो ! सहूँगा, तुम बल दोगे और मैं सहन करूँगा। तुम हँस दोगे और मेरे सभी दुःख दूर हो जाँयेगे। तुम हाथ बढ़ा दोगे, मैं किनारे चला आऊँगा। तुम अपने चरणमें रख लोगे, मैं कृतार्थ हो जाऊँगा।

विभो ! भविष्य और भी भयानक देख पड़ता है। प्रभो ! दण्ड तुमने इतना कठोर दिया ! मुझे यह भी अधिकार नहीं है कि मैं उसे कठोर कहूँ। क्षमा करना, पागलका प्रलाप है। अपने इस दुखियामें इससे भयानक लाखों अवगुण पाओगे, अतः क्षमा करना। हाँ विभो !

दण्ड भोग रहा हूँ जिस अपराधका, फिर भी लाख प्रयत्न करनेपर प्रतिक्षण उसी ओर प्रवृत्ति बढ़ती है। उसीको फिर भी करता हूँ। नाथ ! समझमें नहीं आता। विभो ! रो रहा हूँ। बचाओ मुझे इस शैतानके पंजोंसे। मेरा उद्धार करो। मुझे वह सचमुच ही ले मरेगा, अगर तुम उसे नहीं हटाओगे। हृदय तुम्हारे सामने है। अन्तर्यामी ! तुमसे कुछ छिपा नहीं है। देख लो कितना प्रयत्न करता हूँ और क्या कहूँ ? विभो ! मेरा विश्वास है तुम मुझे अपराधी नहीं बनाओगे। संसार मुझे जो कुछ समझे, मुझे उसकी परवाह नहीं है। तुम्हारे सामने मैं वंचक नहीं हूँ, इतना संतोष है।

जीवनधन !

हमारी असमर्थतापर तरस खाओ। मेरी प्रार्थना सुन लो। हृदयकी ओर देखो। मेरी चेष्टा आजीवन इसे शुद्ध रखनेकी रही है। शैतानने इसे कलुषित करना चाहा है। कितनी दूरतक मैं उससे अलग हूँ, अन्तर्यामी ! यह तुमसे छिपा नहीं है।

नाथ ! संसारको मेरी आलोचना करते देख मैं रोता हूँ। नाथ ! बलका अभाव है, अतः उस मिथ्या आलोचनासे भी रोने लगता हूँ। नाथ ! क्या करूँ हृदय कोई ऐसा पदार्थ अवश्य नहीं, जिसे मैं फाड़ दूँ और दिखा दूँ

संसारको अपना सच्चा हृदय । विभो ! मेरे पास तो केवल तुम्हीं हो, जिसे मैं अपनी शुद्धताके लिये प्रमाणस्वरूप दे सकता हूँ । विभो ! पर तुमने तो मेरे उपहासमें ही आनन्दका स्रोत बनाया है । लोगोंको भ्रममें पड़े देखकर मैं असहाय रोने लगता हूँ । मेरी यंत्रणा अब अकथ हो गयी है, पर तुम हँसते हो । जो हो, विश्वेश ! आओगे अवश्य, प्रमाण भी दोगे, संसार पछतायेगा भी अवश्य मेरे प्रति उन आलोचनाओंके लिये, पर जानता नहीं कब ? शायद जब मैं अपनी मानवलीला संवरण करूँगा तब । ................ कुछ पता नहीं है कब आओगे और मेरे लिये सफाई दोगे । जो हो ........... क्या कहूँ तुम्हारा विधान मंगलमय है, इसीमें हमारा कल्याण है । मैं तुम्हारा हूँ तुम हमारे हो । आओगे भी अवश्य, शायद दिन दूर नहीं है ।

तुम्हारा ही



दिनांक १०.१.३४

दुखियाके धन !

संसार हमसे विमुख है। मैं अकेला हूँ। मेरे पास कुछ नहीं है। अस्थिपिञ्जर मात्र अवशेष है, फिर भी तुम्हारी आशा है। तुम हमसे विमुख न होना आर्तहरण !

जितना ही देखता हूँ ............ उतना ही दुखी होता हूँ। शैतानका पंजा कितना कठिन है ? पकड़ा जानेपर छूटना असम्भव है। पकड़े गये हैं वे लोग नाथ ! मेरी ओरसे सही, रहम करो, उबार लो। उनका भविष्य बड़ा ही अंधकारमें होगा।

नाथ ! लाख प्रयत्न करनेपर भी असफल हो रहा हूँ। वर दो विभो ! दयामय ! लीलामय ! अशरणशरण ! उबार लो इस दु:खियाको शैतानके पंजोंसे। नाथ ! फिर कब पड़ जाऊँगा, ठीक नहीं जानता। उसका प्रलोभन असाधारण है, उससे निस्तार केवल तुम्हारे ही भक्त पा सकते हैं।

मेरी अवस्था क्षीणतर हो गयी है, फिर क्या करूँ भगवन् ! तुम्हारी आज्ञा तो सर्वोपरि है। तुम्हारे द्वार निश्चित दण्ड तो भोगना ही पड़ेगा। विभो ! प्रार्थना है कि

सब कुछ करना, पर अपने चरणसे विलग न करना।

कितनी बार तुम्हें याद करनेका प्रयत्न किया है दुःखमें पड़कर, कितनी बार तुम्हारी दुहाई दी है, पर उससे निस्तार और तुम्हें भूल बैठना एक साथ ही होता है। अन्तर्यामी ! तुमसे छिपा नहीं है। नाथ ! ला दो हृदयमें शान्ति, बहा दो प्रेमकी धारा, जिसमें बह जायँ वे प्रवृत्तियाँ।

सबसे बड़ा ध्येय नाथ ! कर्मफलका त्याग है। मेरी ओर देखो विभो ! न्याय करो। किस तरह शैतान मुझे इस पुण्य क्षेत्रसे प्रतिक्षण खींच रहा है ? नाथ ! बल दो, जिससे मैं सर्वथा इसका त्याग कर सकूँ। तुम्हारी एक चितवन नाथ ! मुझे इस धर्मसंकटसे पार लगा देगी।

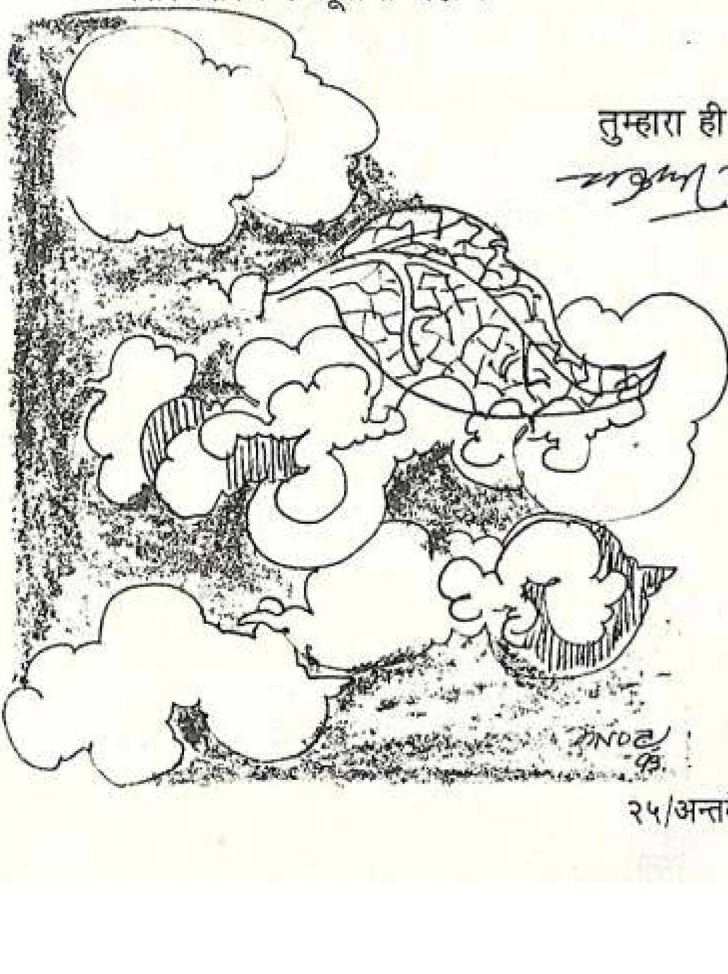
ईर्ष्या द्वेषकी लपट, दमनका कोटि यत्न करनेपर भी हमसे निकलने लगती है। मैंने इन्हें दमन करना चाहा है। मैं प्रतिदिन इन्हें दूर भगा रहा हूँ। नाथ ! देख पड़ता है ये मर गये, पर फिर न जाने कहाँसे आ पड़ते हैं। विभो ! हृदय तुम्हारे सामने है, इस सम्बन्धमें भी खासकर ........... प्रतिदोषी नहीं हूँ। मैंने उन लोगोंके प्रति इसका पूर्णतया दमन किया है। नाथ ! मेरी इस विजयको चिरस्थायी बना दो।

नाथ ! तुम्हारा विधान मंगलमय है। इसमें

अमंगलका प्रवेश एक क्षणके लिये भी नहीं हो सकता । नाथ ! सब जगह मेरी और सारे संसारकी भलाई निहित है । मैं इसे जानता हूँ करुणानिधि ! मुझे इसपर पूर्ण विश्वास है, पर कातर हृदय रो ही देता है । क्या करूँ सर्वेश ! तुम जानते हो, मुझमें बल नहीं है । थपेड़ोंने मुझे जर्जर बना डाला है ।

अशरणशरण ! भूलना नहीं ।

तुम्हारा ही



दिनांक ११.१.३४

भगवन् !

जितना ही निकट होना चाहता हूँ, उतना ही दूर हट रहा हूँ। प्रवृत्तियाँ मुझे खींचे ले जा रही हैं। नाथ ! देख लो कैसा बदल रहा हूँ। मिलान कर लो नाथ ! सब कुछ सम्भव है, पर नाथ ! यह बिना तुम्हारी सहायताके संभव नहीं। मत सताओ भगवन् ! दुखियाके धन ! उबार लो इस अधमको जीतेजी ही मरेके समान हो रहा हूँ। क्यों इतना कठिन दण्ड?

नाथ ! असह्य है। विभो ! मेरी क्षमता नहीं कि पार लग सकूँ। बड़ी कठिन कसौटी है लीलामय ! तुम्हीं हाथ पकड़कर खींच लो।

नाथ ! उनपर दया करना विभो ! और मुझे नाथ ! मत छोड़ना।

तुम्हारी मुस्कानकी छटा अत्यन्त कातर होनेपर प्रत्यक्ष रूपसे देख लेता हूँ। जभी देखता हूँ, तभी तुमको हँसते देखता हूँ।

अन्तर्यामिन् !

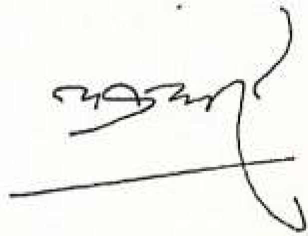
किस हीनावस्थामें हूँ ? देखकर भी अजान मत बनो। देख लो मेरी ओर एक बार। मैं अधम डूबनेसे बच जाऊँगा।

'जनम सिरानो ऐसे ऐसे' ............. विभो ! कभी याद नहीं किया । यदि किया भी तुमसे छल किया है । विभो ! नहीं बच पाता शैतानके उन सुन्दर प्रलोभनोंसे । मेरे माथेपर वह आज भी उसी तरह खड़ा है । मेरे सर्वनाशकी ताकमें बैठा है । विभो ! तुम्हारी दयाके बिना इस अधमका निस्तार नहीं है ।

जीवनधन !

पुकार रहा हूँ । कल भी पुकारूँगा । जब तक प्राण है, तब तक पुकारूँगा । सर्वव्यापिन् ! तुम सुन रहे हो, तुम सुनोगे और मुझे कृतार्थ करोगे । प्राणहीनको सतानेसे तुम्हें कुछ न मिलेगा । मंगलमय ! तुम्हारा विधान मंगलमय है । मैं तुम्हें किस तरह दोषी कह सकता हूँ । भूलना न प्यारे ।

तुम्हारा ही



दिनांक १२.१.३४

मनहारी !

करता हूँ जो कुछ, सो अपनी जठरानलकी तृप्ति करता हूँ। जो कुछ भी मेरा आदान - प्रदान है, जो कुछ भी मेरी अर्चना है, उसे मैं तुम्हें अर्पण करता हूँ। दयामय ! मेरा यह भाव चिरस्थायी रहे । विश्वेश ! मेरी यह विनय सुन लो । नाथ ! अब विशेष न सताओ । मेरी इस एकान्त इच्छाको पूरी कर दो । नाथ !

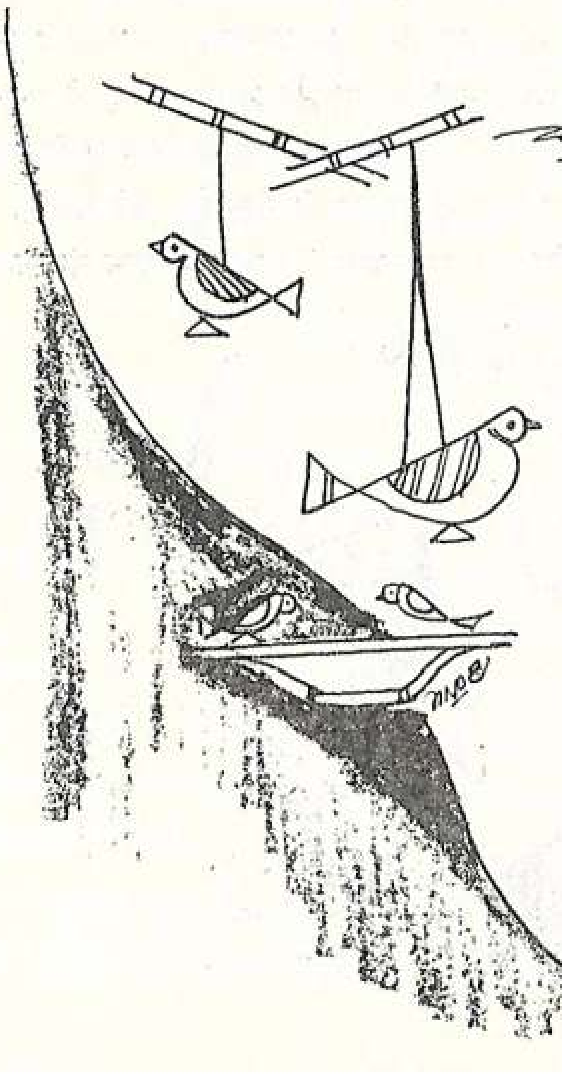
विश्व एक रंगमंच है । सबको यहाँ आकर अपनी कलाका प्रदर्शन करना पड़ता है । नाथ ! फिर समय अवशेष होनेपर परदा गिरता है और तब इसका त्याग अनिवार्य है । विभो ! जिसने इसे तुम्हारी लीलाका स्रोत समझा, जिसने इसमें तुम्हारी मुस्कानकी छटा देखी, जिसने अपनेको केवल साधन मात्र समझा, वही पार लगा । शैतानका पंजा यहाँ ही ठहरा है, जो मनुष्यको सदाके लिये अंधकारपूर्ण गह्वरमें भेज देता है । जो सावधान है, जिसपर तुम्हारी दया है, वही बचता है ।

प्राणाधिक !

बहुत दूर नहीं हो । तुम सचमुच निकट हो, पर मैं अधम अभी तुम्हें पा नहीं सकता । शरणागतपाल !

शरणागतकी रक्षा करो । मंगलमय ! तुम्हारा विधान मंगलमय है । भूलना न प्रियतम ।

तुम्हारा ही



दिनांक १३.१.३४

अशरणशरण !

बड़ा पापी हूँ। आया हूँ शरणमें। देख लो नाथ मेरी अवस्था। दया करो मेरी इस हीनावस्थापर। नाथ ! सिवा तेरे बिना और उद्धार नहीं है। दुखियाके धन, सदा ही तुमसे दूर हो जाता हूँ विभो ! क्षमा करना। जीवन निस्सार हो गया है। जितना ही देखता हूँ, उतना ही रोता हूँ। मेरी प्रार्थना है सुन लो अन्तर्यामिन् ! मंगलमय ! तुम्हारा विधान मंगलमय है।



तुम्हारा ही

दिनांक १४.१.३४

प्रियतम !

क्षुद्र स्रोतोंसे बहता हुआ अथाह अनन्त सागरमें आ पहुँचा। किनारा नहीं सूझता। शैतानके प्रलोभनोंने अंधा बना डाला है। जीवनधन ! कितनी बात कहें ! सर्वज्ञ ! तुमसे क्या छिपा है ? मनकी गति नाथ ! तुम सभी जानते हो। आओ हे करुणामय ! इस दीनकी करुण पुकार सुन लो।

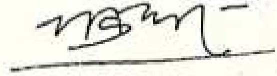
नाथ !

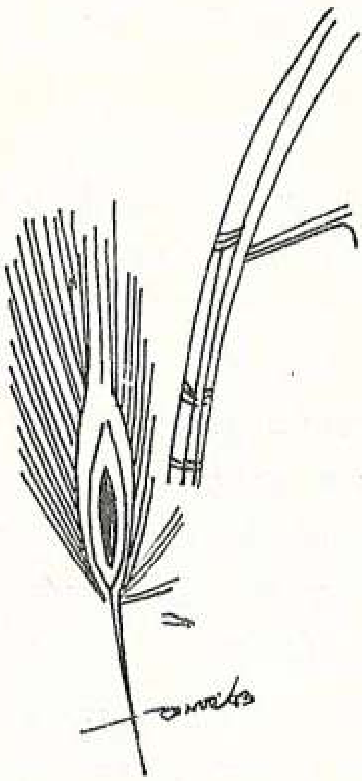
तुम दयालु हो, मैं पथका हीन भिखारी। तुम न्यायी हो। सबका न्याय तुमपर है। नाथ ! केवल मेरी प्रार्थना है, मेरी रक्षा करो। नाथ ! मैं वंचक हूँ। शैताननने तुमसे भी वंचना करनेको उत्साहित किया है। दयालु ! इस बार मेरी रक्षा कर लो। मेरे लिये चरणोंमें अपना स्थान रखो। दयाके भिखारीको नाथ ! अपनी दयाकी भीख दे दो। नहीं सुनोगे ! विभो ! अब न जलाओ। सब जगह तुम्हारी छटा देखनेपर भी धैर्य छूट रहा है। अन्तस्तलकी पुकारकी अवहेलना तुम नहीं करते। विश्वेश !

तुमपर दृढ़ विश्वास रखनेवाला कभी धोखा नहीं खाता। तुम्हारे इस अभय वाक्यको यह नराधम भूल जाता

है, इसीलिये कष्ट पाता है। नाथ ! पकड़ लो बाँह। मेरा विश्वास दृढ़ कर दो। जीवनधन ! आर्तहरण ! सुनो मेरी पुकार। हृदयको देख लो और रहम करो। बड़ा दुःख है। असह्य दण्ड है ! नाथ ! हल्का कर दो। शरणागतपाल ! रक्षा करो।

तुम्हारा ही





दिनांक १५.१.३४

प्राणाधिक !

देख लो मेरी असमर्थता और शैतानकी जबरदस्ती कि किस तरह शैतान मुझे घसीट रहा है। इच्छा करनेपर भी मैं मुक्त नहीं हूँ। नाथ ! मैं सचमुच ही पागल हो रहा हूँ। विश्वेश ! क्षुद्र लालसाओंका दमन नहीं कर पाता। उसे मैं अपना साधन समझ रहा हूँ। विभो ! जानता नहीं यह उचित है या अनुचित, पर तो भी कर रहा हूँ। तुम्हारे लिये तो यह क्षणका काम था, पर तुम नहीं करोगे। क्यों करोगे ? हमसे रुष्ट हो। मैंने तुम्हें धोखा दिया है, तो इसीके लिये यह दण्ड है ? इतना होनेपर भी मैं उसी पथकी ओर आकृष्ट होता हूँ। लीलामय ! महर्षि लोग सिद्ध होते हैं, उनमें बल होता है। वे असह्य कष्टको भी सुखपूर्वक सह लेते हैं, पर मुझ अधममें बल कहाँ, साहस कहाँ ! सारी उम्र तो तुमसे अलग रहा। जब कष्ट पड़ा, तुम्हारे पास गया, कष्ट छूटा और तुमको भूला। ऐसे अधमको क्यों याद करोगे, पर तुम्हारे सिवा इस अधमका निस्तार नहीं है। दयामय ! तुम्हारे बिना मुझे कोई नहीं बचा सकता। नाथ ! मैं डूब रहा हूँ। मेरी पुकार सुन लो। तुमने बहुतोंकी रक्षा की है, मेरी रक्षा भी कर लो। नाथ ! चरणमें लीन हो जाऊँ, यह वर दे

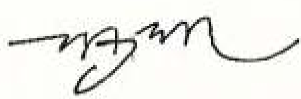
दो। फिर नाथ ! हमें शैतान छू नहीं सकता।

नाथ ! मेरी असमर्थतापर हँसते हो । मेरी लालसाओंपर हँसते हो। नाथ ! मुझे ज्ञान नहीं। ऐसा क्यों करते हो। मुझसे अधिक .......लोग वर्तमान हैं। नाथ ! यह है अनधिकार चर्चा। इसके लिये क्षमा करना। जब तुम्हारे सामने है, अत: क्षमा करना।

मेरी रक्षा तुम अवश्य करोगे, मैं जानता हूँ। कितना भी पापी हूँ, पर नाथ ! तुम हमपर रहम करोगे। हृदय मैंने तुमको दिया है, पर नाथ ! उन लोगों .........की भी रक्षा करना। नाथ ! सचमुच भविष्य अंधकारमें है। तुम्हारे सिवा उनका निस्तार नहीं।

नाथ ! देख लो मेरी दुर्दशा ! कैसे स्थिर करूँ ? नाथ ! आज बता दो। कुछ उपाय जरूर बता दो। तुम्हारे चरणोंमें आया हूँ भक्तभयहारी ! मुझे निराश न करो दयामय !

तुम्हारा ही



दिनांक १६.१.३४

अनन्त !

तुम सर्वव्यापी हो । तुम्हें अपनी गाथा सुनानेके लिये किसीको कहीं भी जाना नहीं पड़ता । सचराचरमें तुम्हारी विभूतिका आभास पाया जा सकता है, पर मेरे ऐसे अधमको उतना धैर्य कहाँ ? सारा जीवन स्वार्थमय बिताकर कष्ट पड़नेपर तुम्हारे पास आया हूँ । सदा यही करता आया हूँ । न जाने भविष्यमें क्या होगा । दयामय ! तुम्हारे पास रुष्ट होनेका कारण पर्याप्त है । मैंने तुमसे वंचना की है । उसका फल अवश्य भोगना पड़ेगा । तुम्हारी दयाका अनुचित लाभ उठाया है, अतः बदलेमें उतना ही रोना पड़ेगा । तुमने दण्ड दिया है और दिया है हमारी आत्मशुद्धिके लिये, पर मैं मूर्ख इतना बड़ा कहाँ, जो तुम्हारे विधानकी सार्थकता समझूँ । जो हो, विभो ! चरणसे विलग न करना ।

अधमउधारण !

तुमसे हमारी कौन सी बात छिपी है ? तुम हमारे किस कष्टको नहीं जानते ? तुम हमारी किस प्रवृत्तिसे अवगत नहीं हो ? फिर नाथ ! क्यों लिखने जाऊँ ! सर्वज्ञ ! हृदय तुम्हारे सामने रख दिया है । देख लो ।

इसपर असह्य वेदनाकी छाप पड़ी है। मायामय ! न जाने कब ............कोई इन पत्रोंको देख सकता है, अत: मैं नहीं चाहता मेरे कष्टका अनुभव संसार कर सके। तुमसे मुझे सुनाना है। तुम सर्वज्ञ हो, पर नाथ ! देखो शैतानका अत्याचार ...........नाथ ! देख लो मेरी क्षुद्र लालसाओंकी ओर ..............नाथ ! नहीं जानता क्या उचित या अनुचित है ? सम्भव है, इस अधमके वे साधन भी मेरे विमुख हों। इसलिये कहता हूँ नाथ ! यह है .........शैतानकी शैतानी।

नाथ करुणामय !

सुना रहा हूँ अपनी करुण गाथा। नाथ ! संसार हँसता है ...........देखो मेरी असमर्थता ............नाथ ! तुम ही साक्षी स्वरूप रहोगे। मैं कितना दूरतक दोषी हूँ, इसे एक मात्र तुम ही जानते हो। फिर भी विनाशकी ओर ............। मैं निर्दोष हूँ। विभो ! मेरी आत्माकी पुकार है। नाथ ! संतोष है, पूर्ण विश्वास है कि तुम्हारा विधान मंगलमय है। इसमें लाख प्रयत्न करनेपर भी कोई अमंगलका आभास नहीं पा सकता, फिर नाथ ! धैर्य दो, बल दो और दे दो कर्म--फल–त्यागकी पूर्ण शक्ति। नाथ ! बना दो इस लायक कि सब कुछ तुम्हें अर्पण कर सकूँ।

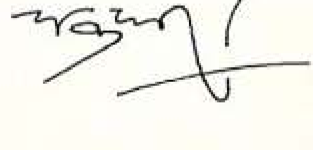
ज्ञानगम्य !

एक बात है। बहुत रो रहा हूँ। थोड़ी सी शान्ति इस अशांत हृदयको दे दो और नाथ ! एक बार फिर अपने उस मधुर मुस्कानकी ज्योति मेरे हृदयमें जगा दो । पार लग जाऊँगा, अन्यथा निस्तारकी कोई आशा नहीं है।

करुणामय !

तुम समदर्शी हो । अधमोंके लिये सहारा तुम्ही हो नाथ ! मेरा भी निस्तार तुम अवश्य करोगे, पर नाथ ! मुझमें धैर्य नहीं है। विभो ! मैंने उन्हें क्षमा किया नाथ ! तुम उन्हें सुबुद्धि दे दो और मुझे नाथ ! शरणमें ले लो। नाथ ! तुम्हारे शरणमें मुझे संसारकी कोई शक्ति हानि नहीं पहुँचा सकती। मैं सकुशल तुम्हारे चरणोंमें लीन हो जाऊँगा । विभो ! नाथ ! करुणामय ! एक बार हँस दो, जिससे मैं तुम्हें देख सकूँ ।

तुम्हारा ही



दिनांक १७.१.३४

विश्वेश !

एक बार अपनी कमनीयताका दर्शन करा दो। नेत्र सफल हो जायँगे। हृदय अपना इप्सित पा जायेगा। विभो ! कब तुम्हारी उस अनन्त प्रेममय मूर्तिको देखूँगा ? जीवनमें नाथ ! कुछ नहीं कमाया। केवल पापकी भारी गठरी पीठपर लाद ली है। संसारके द्वारा तिरस्कृत तुम्हारी खोजमें अग्रसर हो रहा हूँ। चमका दे अपनी अनन्त ज्योति, दूर कर दे मेरी क्षुद्र लालसाओंको, बना दो हमें इस योग्य कि जिससे कर्मफलका पूर्णतया कर सकूँ।

प्रेमार्णव !

तुम भावमय हो। मेरे पास कुछ नहीं है दीनबंधो ! है केवल कलुषित प्रवृत्तियोंसे भरा हुआ क्षुद्र अधम मन। नाथ ! उसे अर्पण करता हूँ। नाथ ! इस अधमकी इस भेंटको स्वीकार कर लो।

नाथ ! डूब रहा हूँ। केवल तुम्हारी आशा है। आओ विभो !

तुम्हारा ही

दिनांक १८.१.३४

मेरे प्यारे नटवर,

समय आ गया है। दण्ड क़ाफी मिल चुका है। वेदना असह्य हो गयी है। करुणामय ! दया करो। जीवनसे निराश, संसारसे तिरस्कृत, संसारकी हँसीका पात्र यह अधम तुम्हारी शरणमें आया है। बचा लो अनन्त !

संसारके झकोरोंसे डर गया हूँ। अप्रतिभ होकर तुम्हारी ओर देख रहा हूँ। भँवरमें नाव पड़ी है। खे दो विभो ! उसे किनारेतक।

नाथ ! मैं अपनी क्षुद्र लालसाओंको क्या करूँ ? सर्वज्ञ ! देख लो किस तरह उनके दमनमें असमर्थ हूँ। यह भी नहीं जानता कि वह भला या बुरा है। विभो ! पथभ्रष्ट मुझको रास्ता दिखा दे। करुणामय ! तुमपर भरोसा रखनेवालेको निराश नहीं होना पड़ता। आओ प्रेमार्णव ! ...... एक बार इस जलते हुए हृदयको शांति दे दो। विभो ! तुम्हारे सिवा इन करुण क्रन्दनोंको कौन सुनेगा ? विभो ! क्या कहूँ ?......... मेरी लालसाओंको भी अर्पण कर रहा हूँ। जानता नहीं, इसे स्वीकार करोगे या नहीं।

तुम्हारा ही

दिनांक १९.१.३४

मेरे प्यारे लीलामय !

एक दिन था, .जब तुम हमपर सबसे विशेष करुणा रखते थे, पर मैं अधम तुमको भूल गया। अब उसका फल भोग रहा हूँ। विश्वेश ! तुम्हारी दया कम नहीं होती। तुम तो दीनबंधु हो। लोग पापके आवरणमें तुम्हारी उस मुस्कानको नहीं देखते।

नाथ ! आज माँ सरस्वतीकी पूजामें सभी व्यस्त हैं। मेरे पास न साधन है, न हृदय, न साहस। कैदी हूँ। दण्ड भोग रहा हूँ, अतः कुछ नहीं है। जो हो, तुम्हारे इस रूपकी अर्चना कर रहा हूँ। स्वीकार करना करुणानिधे !

माँ !

मैं डूब रहा हूँ। तुम असहायकी आश्रयदाता हो। तुम्हारी करुणा मुझे पार लगा देगी। संसार मुझसे घृणा करता है, पर तुम मुझसे घृणा न करना। मैं तुम्हारा अधम बालक हूँ। माता अपने पुत्रको बराबर ही प्यार करती है, अतः तुम भी इस अधमको न भूलना। तुम देख लो माँ, देखो। किस तरह शैतानके प्रलोभनोंमें पड़कर कष्ट भोग रहा है तुम्हारा लड़का। दया करो माँ !

जीवनमें निराशा ही केवल दीख पड़ती हैं। तुम्हारा यह रूप माँ ! निराशाके बादलोंको छिन्न-भिन्न कर देगा। दया करो माँ !

माँ ! क्षुद्र भावनाओंकी अर्चना कर रहा हूँ। इसे स्वीकार करना। इस दरिद्रके पास माँ ! और कुछ नहीं है।

...........फिर विश्वेश ! पता नहीं, जानता नहीं, तुम्हारे कितने रूप हैं। सारा संसार तुममें व्याप्त है, अतः सब .............स्वीकार करना। गरीबको मत भूलना मंगलमय !

तुम्हारा ही

दिनांक २०.१.३४

अनन्त !

तुममें लीन हो जाना ही पूर्ण आनन्दका अनुभव करना है। संसार असार है। सब कुछ अनिश्चित है। तुम केवल निश्चित हो। विभो ! ले लो मुझे चरणोंमें।

तुम्हारा ही



दिनांक २१.१.३४

सर्वेश !

इच्छा करनेपर भी असमर्थ हूँ। ............चाह है, पर साधन नहीं। भगवन ! तुम्हारा विधान मंगलमय है। देख लो नाथ ! मेरा हृदय। .............अगर कुछ भी कर सकता। विभो ! हम तो साधन मात्र होते हैं। जो हो, मेरे लिये यह अनधिकार चर्चा व्यर्थ है।

नाथ !

अन्तमें आकर फिर फिसल गया। नाथ ! दमन न कर सका। शैतानकी जीत हुई नाथ ! करुणाधार ! शरणागतपाल ! अनाथपर दया करो। हृदय दिया है तुमको नाथ ! संसारको मैंने क्षमा किया है। अब विभो ! दण्ड कम कर दो। शरणमें आया हूँ। नाथ ! चरणमें रहने दो।

जीवन कितना निस्सार है ! सार तुम हो, पर तुम्हें भूल जाता हूँ। नाथ ! ............. सुबुद्धि दे दो ............. समझ जायें वे अपने पथको। क्षमा करना नाथ ! मुझे अधिकार नहीं है। भगवन् ! पागलकी बातोंपर ध्यान न देना। बस, मैं भूल न मानूँ उन लोगोंकी .......... मेरा अधिकार इतना ही है। नाथ ! हृदय निर्मल है, इसपर कलंककी छाप कोई नहीं लगा सकता। तुम केवल साक्षी

हो। विभो ! संसार तो नाशवान है फिर क्यों डरूँ, पर मुझ कायरमें यह धैर्य टिकता नहीं। .............पाहि। बल दे दो, भीख दे दो। नाथ ! तुम्हारी दयाका प्यासा हूँ। पिला दो अमृत–धारा। जीवन सफल हो जाय।

नाथ ! रोता था। रो रहा हूँ। कितने दिन रोऊँगा, मालूम नहीं। और कितने दिन आँसू गिराऊँ ? .......नहीं। ठोकर लगी है नाथ ! ............घाव भर नहीं सकता। मरहम-पट्टी तुम्हारे पास है दुखियाके धन !

आओगे कृष्ण ! सब कुछ होगा। तुमने मेरे दुःखमें ही मेरा उद्धार निश्चित किया है। भक्तवत्सल ! मैं अज्ञानी जानकर भी नहीं जानता। फिर ............... विनय है शरणमें रखो।

तुम्हारा ही

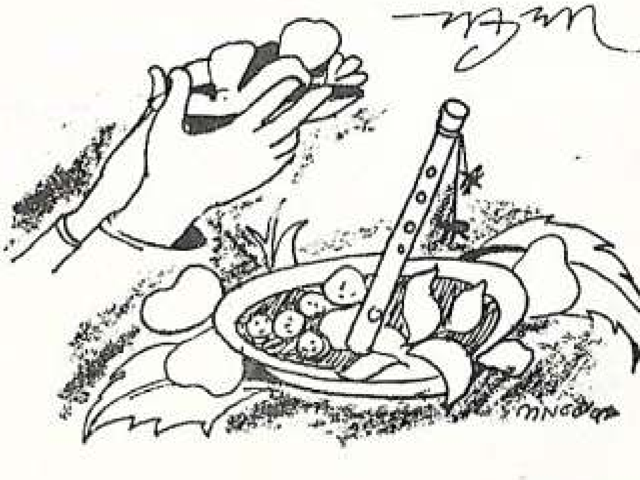
दिनांक २२.१.३४

दयामय !

जो कुछ भी कर रहा हूँ उसे तुम्हें नाथ ! अर्पण करता हूँ। तुम मेरी इस क्षुद्र भेंटको स्वीकार करना। नाथ ! क्षुद्र भावनाओंको लेकर आया हूँ। उसे तुम्हींपर चढ़ा दे रहा हूँ। इसे न ठुकराना।

प्रेमार्णव ! तुम्हीं एक सार हो और सब कुछ असार है। तुम्हारी मधुर मुस्कानकी आभा प्रत्येक कणमें है विश्वेश ! उद्धार करो।

तुम्हारा ही



दिनांक २३.१.३४

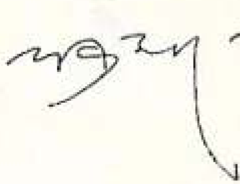
नटवर !

विनय मेरी तुमने सुनी है । नाथ ! तुम्हारी पवित्र मुसकानका आभास मुझे मिल रहा है । नाथ ! सब कुछ तुममें अर्पण करता हुआ तुम्हारी शरणमें आया हूँ । शरणसे विलग न करना ।

शरणागतपाल !

दुःखसे जर्जर जीवनकी शांति तुम्हारे पास है । नाथ ! माँगता हूँ एक चीज । नाथ ! दुःख-सुखमें मेरे भाव एक हो जायँ, पूर्णतया कर्मफलका त्याग कर सकूँ और समझ सकूँ सर्वदा ही कि जो कुछ मैं करता हूँ, वह तुम्हारा है —— मैं साधन मात्र हूँ । विशेष विनय !

तुम्हारा ही



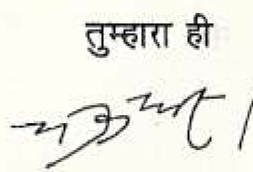
दिनांक २४.१.३४

जीवनाधार !

तुमको मैंने अपना हृदय दिया है। सारा संसार इसे हीन, क्षुद्र, कलुषित समझता है। तुम सच्चे पारखी हो, अतः तुम्हें यह तुम्हारी ही चीज सौंप रहा हूँ। नाथ ! तुम्हारे ही वाक्य हैं कि पत्र-पुष्प-फल यदि भक्तिपूर्ण हृदयसे दिये जायँ तो तुम उसे ले लेते हो। अतः सच्ची किन्तु .......... वासनाओंसे युक्त तुम्हें अर्पण कर रहा हूँ। विभो ! स्वीकार करो। सब कुछ होनेपर भी यह शैतानके प्रलोभनोंसे एकदम ही मुक्त नहीं है। इसलिये अमल कर दो इसे मेरे जीवनधन !

नाथ ! दुःख है। अपार दुःख अनुभव करता हूँ, पर नाथ ! यह असार है। नाथ ! बाहें पकड़ लो, जिससे मैं अपने सिद्धान्तको कार्य रूपमें परिणत कर सकूँ, अन्यथा शैतान डुबा देगा। भगवन् ! तुम्हारी दयाकी भीख चाहिये और फिर मैं इन थपेड़ोंसे लड़ लूँगा।

तुम्हारा ही



दिनांक २५.१.३४

अशरणशरण !

सब कुछ करता हूँ, पर ! नाथ अपने भावोंको समान करनेमें असमर्थ पाता हूँ। नाथ ! बड़ा दीन हूँ। दु:ख मुझे विचलित कर देता है। सुखमें मैं मूर्ख आनन्दित होता हूँ। नाथ ! ये सब क्षणस्थायी हैं, पर मुझ अशान्त हृदयको इसपर विश्वास नहीं होता है। नाथ ! तुम दीनबंधु हो। तुम मेरी प्रार्थना सुन लो। उबार लो इस गह्वरसे दयामय ! दयाकी भीख दे दो। नाथ ! बना दो मुझे इस योग्य कि मैं टिक सकूँ, स्थिर रह सकूँ शैतानके सामने।

नाथ ! सब कुछ छोड़ रहा हूँ। जानता नहीं, छूटेगा या नहीं, पर मैंने इसकी चिन्ता छोड़ दी है। बस, सब कुछ छोड़ रहा हूँ। यही चाह है। सब कुछ छोड़ रहा हूँ और आया हूँ तुम्हारी शरणमें। मुझ अधम अभिमानीको शरणमें ले लो। मुक्त कर दो मुझे उन दोषोंसे। तुम्हारे ही अमृतमय वाक्य हैं विभो ! इसकी अवहेलना मत करो सर्वेश ! दे दो भीख ! शरणमें आ़या हूँ नाथ ! तुम मत ठुकराओ। संसारका मुझे डर नहीं है।

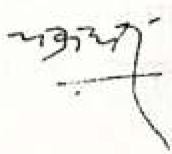
तुम्हारा ही

दिनांक २६.१.३४

करुणेश !

मेरे इस नारकीय जीवनसमुद्रमें कितनी तरंगें आयीं और विलीन हो गयीं । इच्छा हुई इनको गिन डालूँ, पर यह था असम्भव । गणनाका प्रयास तभी सफल हो सकता था, जब तरंगका आविर्भाव बंद हो जाय । आज भी एकपर एक हिलोरें आ रही हैं । किसीमें बह जाता हूँ फिर याद आती है तुम्हारी वाणी और अथक परिश्रम करता हूँ किनारे लौटनेको । एक हिलोर तुम्हारा संदेश लाती है, बहा ले चलती है तटकी ओर । सँभलने नहीं पाता कि विकट उद्दण्ड हिलोरें फिर बहा ले जाती हैं । यही है प्रतिक्षणका कार्यक्रम । इसीमें बह रहा हूँ । किनारेसे मझधार और मझधारसे किनारे ।

तुम्हारा ही



दिनांक २७.१.३४

मायामय !

आशाकी भँवर बड़ी ही भयानक है । मानवजीवनकी पहेलियोंसे अठखेलियाँ करती हुई हमारी वासनाएँ उसी तरह चंचल हैं । इसमें शिथिलता नाममात्रको नहीं । तुम जानते हो मेरे जीवनधन ! कितनी चेष्टाएँ मैंने की इनके प्रतिरोधके लिये, पर सब विफल । शैतानके प्रलोभनोंसे मुक्त होना नाथ ! कठिन है । इसका अदृश्य हाथ मुझे उसी गह्वरकी ओर खींच रहा है । इन्हीं वासनाओंके द्वारा मेरे नाशका आयोजन किया जा रहा है । फिर क्या नाथ ! तुम्हारा अदृश्य हाथ मेरी रक्षा न करेगा ?

जीवनधन !

असहाय हूँ । देख लो मेरे असमर्थता × × × मेरी हृदयमें क्षुद्र आनन्दका उद्रेक × × × । नाथ ! हाथ पसारकर माँग रहा हूँ । दे दो भीख । हमारी अन्तिम लालसाकी हत्या न करो ।

तुम्हारा ही

चक्रधर

दिनांक २८.१.३४

प्रेममय !

सोचा था, संसार खेल है, तुम्हारी रचना खेल है। मैं भी खेलका एक साधन हूँ। पर इस खेलको खेल लेना और वह सफलतापूर्वक ! बड़ा ही कठिन है।

सर्वज्ञ !

इसी तरह कुछ विचार आये हैं। मैंने उन्हें सिद्धान्तका रूप दिया। प्रत्येक बार भावोंको लेकर उसकी अर्चना की। वासनाओंको जलाकर अपनी समझमें एकाग्रताका प्रासाद निर्माण किया। पर हाय ! होता क्या है ? नाथ ! तुम जानते हो। तुमसे क्या छिपा है × × × प्रत्येक बार शैतानकी प्रवृत्ति मेरे सब परिश्रमको नष्ट कर देती है। मेरे वे प्रासाद, मेरे वे भाव सब कुछ शैतानके क्षुद्र प्रलोभनोंमें पड़कर बालूकी भीतकी तरह छिन्न - भिन्न हो जाते हैं। बच जाती हैं उनकी असार स्मृतियाँ। पुकारने लगता हूँ तुमको। तुम हँसते हो और मैं अविराम गतिसे रोना प्रारम्भ करता हूँ।

तुम्हारा ही

दिनांक २९.१.३४

आनन्दमय !

हृदय कहाँ कि जिसे लेकर मैं तुम्हारे सामने अपना रोना रोऊँ ! भवसागरकी उष्ण धारोंमें पड़कर हृदय तो गल गया । अवशेष है केवल दग्ध शरीरके क्षुद्र माँस-पिंड । वे भी प्रतिक्षण गल रहे हैं । सर्वेश ! स्मृतियाँ, धैर्यका अभाव, तुममें संलग्न न होना, कलुषित प्रवृत्तियाँ, तुममें विश्वासका अभाव और क्या ?...... यही है नमक, जो मेरे इस क्षुद्र माँस-पिंडके अस्तित्वको भी मिटा डालेंगे । फिर मैं न रहूँगा। संसारकी आलोचनाओंको देखने फिर मैं न आऊँगा । फिर मैं तुमसे इस बातको कहने न जाऊँगा । कहेगा ही कौन, जब मेरा अस्तित्व ही मिट जायगा, पर प्यारे ! अपनी उस प्रतिज्ञाको तुम न भूलना । जीवनधन ! तुम्हारे चरणमें ही मेरी अखंड शांति है । उसीकी ओर जा रहा हूँ । नाथ ! किंचित् स्थान अपने चरणोंमें रखोगे । अनाथोंके नाथ ! तुम्हें वह स्थान मुझे भीखमें देना ही पड़ेगा । करुणामय ! तुम्हारी याद करता हूँ । तुम्हारे अखंड नियमका प्रतिवाद मैं नहीं हूँ । तुमने किसीको नहीं ठुकराया । मुझ अधमको, जिसे संसारने तप्त कर डाला है, तुम अवश्य नहीं ठुकराओगे ।

तुम्हारा ही

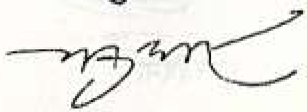


दिनांक ३०.१.३४

ज्ञानमय !

इस तरह हम एक दिन चल बसेंगे । मेरी कातर आत्मा इस नश्वर संसारको छोड़कर तुम्हारे चरणोंमें लीन हो जायेगी । हमारा अस्तित्व इस संसारसे मिट जायेगा । रह जायगी केवल हमारी स्मृति यहाँके कुछ हृदयोंमें । कुछ लोग मुझे नीच कहकर याद करेंगे । कुछ अपनी भूलपर पछतायेंगे और कुछ हमारे लिये रोयेंगे । और तब नाथ ! ..... सभी समझ जायेंगे हमको । हमारे वास्तविक स्वरूपको तब समझ जायेंगे । इसके बाद सभीको ××× मेरे लिये पश्चात्ताप करना पड़ेगा । दयामय ! आज निस्सहाय हूँ । मेरी सुनने वाले केवल तुम्हीं हो । तुम्हें पुकार रहा हूँ । तुम अशरणशरण हो । मेरा कोई नहीं, जो इस प्रवृत्तियोंसे मेरी रक्षा करे । नाथ ! असमर्थ हूँ । मेरे सब साधन विफल ही रहे हैं । अनाथोंके नाथ ! ××× पद–पद पर फिसल रहा हूँ । खे दो मेरी नाव महिमामय ! तुमने कहा है – "एक बार शरणमें आते ही रक्षा करता हूँ ।" नाथ ! मैं सदाके लिये अपनेको तुम्हें सौंप दे रहा हूँ । आओ आर्तहरण ! प्यासेको पिला दो अपने प्रेमका एक कण । यह अभागा कृतार्थ हो जायगा ।

तुम्हारा ही

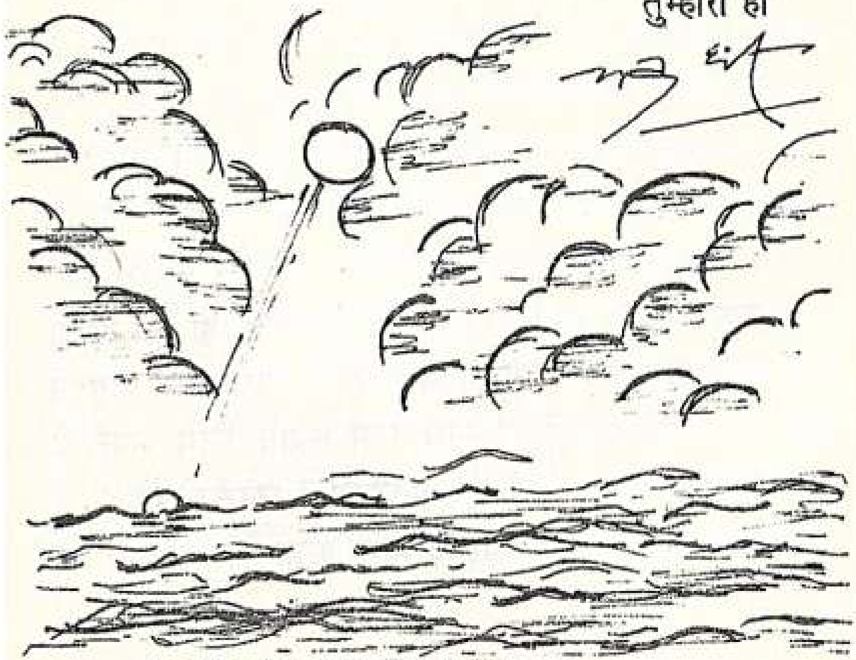


दिनांक ३१.१.३४

हृदयधन !

मेरी आशाएँ नष्ट हो चुकी हैं। कोई हृदयकी विशेष चाह नहीं हैं। हो भी तो व्यर्थ है। पर विभो ! ...... नहीं जानता, ये भाव कबतक स्थिर रहेंगे। मेरे ऐसे अधमने कितनी ही बार तुमसे चाल खेली है। इस बार दृढ़ होकर आया हूँ। देखूँ ..... संसारके थपेड़े क्या करते हैं ?

तुम्हारा ही



दिनांक १.२.३४

जीवनधन !

इच्छा हुई है, तुममें लीन हो जानेकी । सर्वज्ञ ! हृदयकी संवेदनाओंकी श्रद्धाञ्जलि अर्पण कर रहा हूँ । सभी अभिलाषाओंको जलके रूपमें तुम्हारे चरणोंमें भेंट कर रहा हूँ । अपने ममत्वको भी दूर करके चढ़ा रहा हूँ तुमपर ही । ये भावके प्रसादको स्वीकार करो । ये हैं बड़े क्षुद्र, पर नाथ ! मेरे इस अधमकी कातरतासे सराबोर हैं । अत: दीनोंके आश्रय ! इसे स्वीकार कर लेना । एक बार फिर भी कहता हूँ विभो ! मुझे शरणमें ले लो और मैं फिर पार हूँ । शैतान मुझे फिर नहीं पा सकता । समदर्शी ! अधमकी प्रार्थनाको क्या तुम भी ठुकरा दोगे ?

तुम्हारा ही



दिनांक २.२.३४

दुखियाके धन !

स्वामी रामतीर्थने कहा है- "मैं और मेरा, इन्हीं दो शब्दोंमें संसारके सभी दु:ख-सुख निहित हैं। जहाँ ये नहीं, वहाँ दु:खका अत्यन्त ही अभाव है"।

मेरे प्यारे ! मैंने इन दो शब्दोंको हटानेकी चेष्टा की है। मैंने आसक्तिका परित्याग किया है। मैंने तुम्हें पानेके लिये प्रस्थान किया है विभो ! बढ़ रहा हूँ अनन्तकी ओर। नाथ ! मिला लो अपने अनन्त रूपमें इस अधमको।

नाथ ! सब कुछ मैंने तुम्हें दे दिया है। बस, एक मात्र तुम हो, यही जानता हूँ। मैं नाथ ! कुछ नहीं हूँ, यही स्थिर किया है। नाथ ! मेरे इस अधमके इस निश्चयको दृढ़ कर दो। नाथ ! स्वीकार कर लो मुझे। अनाथ हूँ अनाथोंके नाथ !

तुम्हारा ही



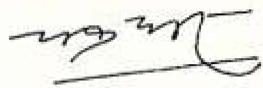
दिनांक ३.२.३४

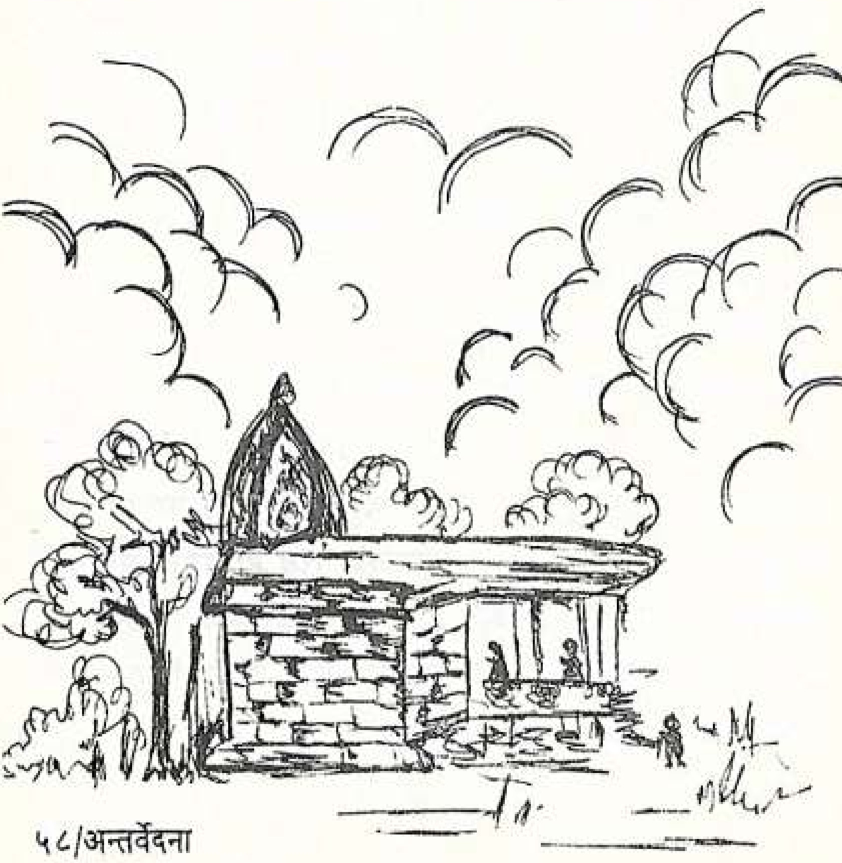
प्राणनाथ !

मैंने संसारको बड़ा ही अच्छा आनन्द देनेवाला समझा था। सोचा था, जीवन-पथ बड़ा ही सरल और सुगम है, पर आज मेरी मोह-निद्रा टूट गयी है। प्रत्यक्ष देख रहा हूँ तुम्हारी लीला। जीवनके अथाह समुद्रमें डूबता-उतराता एक मरुभूमिमें आ लगा हूँ। देखता हूँ, यहाँसे ही मेरे नये जीवनका प्रारम्भ है। यहाँसे मुझे नयी गृहस्थी करनी होगी। आज मेरे वे विचार टूट गये हैं। फिर मैं उस नये पथका अवलम्बन कर रहा हूँ। देखूँ, कितने दिन उसपर टिक सकूँगा। विषयकी आँधी समाप्त नहीं हुई है। हृदयका उत्ताप अच्छी तरह नहीं कम हो सका है। शैतानकी प्रवृत्तियाँ उसी तरह मुँह बाये खड़ी हैं, पर कितनी दूर ? केवल मेरे पार्श्व भागमें ही तो हैं ! और भी, आगे अंधकार-ही-अंधकार है -। पथ कंटकाकीर्ण है। तुम्हारा प्रकाश देख रहा हूँ, पर वह है बहुत दूर। अगर पार कर सकूँगा इस × × × × × फाँसको, तब ही पहुँच सकूँगा। अन्यथा विनाश भी निकट है। अत: दयामय ! क्या इस कातर असहायकी पुकार न सुनोगे। एक बारके लिये ही मेरे जीवनधन ! मुझे दिखला दो मेरा पथ। मुझे दिखला दो

मेरा उद्देश्य। इस बार निश्चय किया है, उसीको पकड़कर × × अनुसरण करूँगा। आर्तहरण ! आओ।

तुम्हारा ही





दिनांक ४.२.३४

प्रियतम !

आज मैं अवश्य ही दूसरा हूँ। सब कुछ तुम्हींमें चढ़ाकर तुम्हारा होकर तुम्हारे सामने भीख माँग रहा हूँ। हाथ पसारकर भीख माँग रहा हूँ। मेरा परिचालन तुम्हारे हाथमें है। मैं नष्ट हो जाऊँ, इसकी अब परवाह नहीं है। यदि कुछ कामना है तो यही कि तुम्हारा होकर रह सकूँ।

जीवनके स्रोत अवैध गतिसे बह रहे हैं। अविकल रह नहीं सकते, क्यों कि स्वभावत: अधोगामी है। पूर्णत्त्वकी प्राप्ति अनन्तमें मिलकर ही होगी, अत: यह निश्चित रहनेपर भी धैर्य कहाँ ? बहुत संभव है नाथ ! अधम निर्भरकी तरह हमारे ये स्रोत भी बालूकी राशिमें ही मिलकर विलीन हो जायँ और फिर नाथ ! निस्तार असंभव हो जाय।

प्राणाराम ! जितना ही सोचता हूँ, धैर्य छूटता है, पर फिर भी मैंने इन्हें संयत किया है। तुमपर छोड़ दिया है, अत: डूबनेपर भी प्रसन्न ही रहूँगा। नाथ ! मैंने अपना अस्तित्व मिटा डाला है। आशीर्वाद दो, मेरे आराध्यदेव ! मैं इसपर दृढ़ रह सकूँ।

तुम्हारा ही

दिनांक ५.२.३४

प्राणाधिक !

जीवनकी जटिल समस्याओंमें डूबता और उतराता हुआ सोचता हूँ कि मेरा अन्त क्या है । सर्वेश ! तुम्हें क्या सुनाऊँ अपनी करुण कथा । जो सब कुछ जानता है, उसे फिरसे जनाकर क्या होगा ? आज कुछ, कल कुछ, परसों कुछ, इसी तरह अवसान समीप होता जा रहा है, पर क्या करूँ, लाचार हूँ । दुखियाके धन ! मैंने अपनेको तुमपर छोड़ दिया है, पर तो भी शांति नहीं है । मैं जिसे अपना साधन समझता हूँ, नहीं जानता, शायद उसमें भी शैतानका हाथ है। करुणानिधे ! दुखियाके सर्वस्व तुम हो । आज मेरे कातर प्राण फिर भी अन्तर्दाहसे जल रहे हैं । मेरी संचित शांति फिर भी खो जा रही है । मैं विनाशकी ओर जा रहा हूँ । दयामय ! बचाओ । शरणमें आये हुएको न ठुकराओ । संसारने लात मार दी । तुमपर आशा बाँधे खड़ा हूँ । दीनबंधो ! आर्तहरण ! अभागेको शरण में ले लो ।

तुम्हारा ही



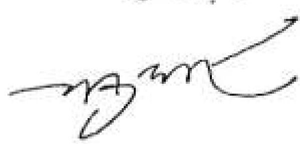
दिनांक ६.२.३४

अनाथोंके नाथ !

वासनाके समुद्रमें हिलोरें उठती हैं। मेरी क्षुद्र नौका उसके प्रचण्ड झकझोरमें पड़कर नाचने लगती है। विचार, धैर्य और प्रतिज्ञा पानी बनकर बह जाते हैं। मैं डूबने लगता हूँ। तुम सुनते हो मेरी करुण पुकार। तिनकाका सहारा लेकर उठता हूँ, और फिर दूसरी तरंगें बहा ले जाती हैं। यही है तुम्हारा विधान !

जितना आगे बढ़ रहा हूँ उतना ही अंधकार दीख पड़ता है। हृद्-तन्त्रीके तार कातर हो उठे हैं। फेर दो अपनी अँगुलियाँ उनपर। एक बारके लिये उन्हें अभय कर दो। अन्यथा नाथ ! मेरा निस्तार असंभव है।

तुम्हारा ही

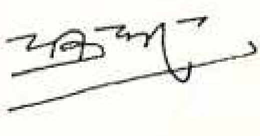


दिनांक ७.२.३४

अशरणशरण !

भटकते हुए पथिककी दृष्टिमें भुवन भास्करकी अन्तिम किरणका जितना मूल्य होता है, उससे अधिक मूल्यवान मैंने इस क्षीण रेखाको समझा है। नाथ ! पता नहीं, रेखाके लोप होनेके पूर्व पहुँचता हूँ या नहीं, पर बढ़ रहा हूँ। सब कुछ तुम्हींपर चढ़ाकर बढ़ रहा हूँ। मेरी अभिलाषाएँ मृतप्राय हो चुकी हैं। आशाका वह पहाड़ छिन्न-भिन्न हो गया है। मृग–मरीचिका दूर हो गयी है, पर वह बहुत विलम्बसे। बहुत देर हो गयी कि मैंने पथ छोड़ दिया है। बहुत देर रेतीमें दौड़ चुका हूँ। हृदय नहीं है। उसके चिह्न मात्र अवशेष हैं, सो भी तुम्हें अर्पण करता हूँ। दयामय ! भिखारीकी भेंटसे घृणा न करना।

तुम्हारा ही



दिनांक ८.२.३४

जीवनधन !

क्रमसे एक-एक विचार आये और निराशाके भीषण भयानक गह्वरमें विलीन हो गये । किसीका सहारा न ले सका । अभी भी पता नहीं, कितने विचार उदय होंगे और कालकी जटिलतामें अस्त हो जायेंगे । विचारा था ........ इसीपर चलकर चन्द इने-गिने दिनोंमें खे ले जाऊँगा । इसीपर अग्रसर होकर अनन्तमें विलीन हो जाऊँगा, पर वे भी खिसक रहे हैं । उल्लास कम हो गया है । शिथिलता तथा निराशाके बादल मँडरा रहे हैं । प्रवृत्तियोंका झकोरा जर्जर कर दे रहा है । आगे शैतान मुँह बाये खड़ा है, पीछे है अथाह भवसागर । संध्याकी छाप पड़ चुकी है । बहुत संभव है, तटस्थ कालरात्रिके इस अभेद्य अंधकारमें भी सदाके लिये विलीन हो जाऊँगा । सर्वज्ञ ! यही है मेरे जीवनका संक्षिप्त इतिहास । एकान्त नीरव ! एकान्त मूक !!

तुम्हारा ही



दिनांक ९.२.३४

करुणामय !

"प्रभुपद पतितन बहु तारे" । वर्षसे अधिक हो गये, मैंने इस पदको सुना था । कितना माधुर्य था ? प्रेमसे लबालब भरे हुए पदके एक–एक अक्षरसे तुम्हारी अखण्ड ज्योतिका प्रकाश फूट पड़ रहा था । जीवनसे हताश निराश प्राणियोंके लिये तुम्हारी इस अभयकी वाणीने हमारे हृद्तंत्रीके तारोंको जगा दिया । आज भी उसी तरह सुनता हूँ । भावोंके आवेशमें अलाप ले उठता हूँ । सोचता हूँ, अधमउधारण ! मेरी भी सुध लेंगे । आओ सर्वेश ! इस तप्त हृदयको अपनी शांति-वारिसे सींच दो । अनाथोंके नाथ ! दुखियाकी करुण पुकारको सुन लो । बचा लो आर्तहरण !

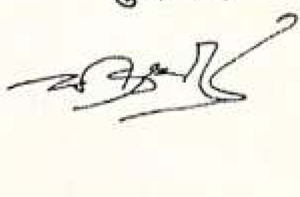
तुम्हारा ही

दिनांक १०.२.३४

दुखियाके धन !

× × × पर यह था एक वेश्याके मुखसे । इस पदको सुना था मैंने जिससे, वह वेश्या थी । उस दिन नहीं, पर अब क्यों मेरा मन कुचला सा देख पड़ता है । समाजके द्वारा पददलित उन वारांगनाकी ओर देखकर रो उठता हूँ । सामने अंधकार देख पड़ता है । हाय, मैं भी अपनी इन अभागिनी बहिनोंका उद्धार कर सकता ! इन्हें इनका पथ दिखानेवाला कोई नहीं है । जानता नहीं, इनकी यंत्रणा कैसी भीषण होगी । इनका पथ कितना भयंकर है ? बिचारी बहिनोंको इसका ज्ञानतक नहीं है । अनाथोंके नाथ ! सब कुछ तुम जानते हो, अतः तुम्हीं इनका उद्धार करो । विभो ! अधमोंको गति तुम्हीं दे सकते हो ।

तुम्हारा ही



दिनांक ११.२.३४

प्राणेश !

जानते हो ? अवश्य जानते हो । दु:खका पहाड़ लेकर बढ़ रहा हूँ । तुम्हींमें मिल जानेके लिये, तुम्हींमें अपनेको लीन कर देनेके लिये । एक दिन था, जब कामनाएँ करता था । अभिलाषाओंका प्रासाद खड़ा करता था, पर अब मैं सब कुछ तुम्हींपर चढ़ा दे रहा हूँ । मैं हूँ संसारका अधम कीट । संसार मुझसे घृणा करता है । संसारकी दृष्टिमें मैं नरककीट हूँ, पर तुम्हारी नजरोंमें कैसा हूँ, इसे तुम ही जानो । जीवनधन ! तुम मुझे नहीं ठुकराओगे । यह मेरा पूर्ण विश्वास है ।

तुम्हारा ही



करुणेश !                                                    दिनांक १२.२.३४

हाहाकार कर उठता हूँ अपनी असमर्थतापर । प्रतिध्वनि भी मुझे चिढ़ानेके लिये हाहाकार कर उठती है । इसी तरह प्रत्येक दिन तिल-तिलकर जल रहा हूँ । अपने नियंत्रणके लिये कितनी बार उठा और गिरा, इसे तुम्हारे सिवा कोई नहीं जानता । पतंगकी तरह वासनाओंके प्रदीपमें कितनी बार जल चुका ...... और कितनी बार जलूँगा, इसके साक्षी एक मात्र तुम्हीं रहोगे । कितनी आशा लेकर सत्यका आह्वान करता हूँ, पर क्षण भरमें शैतान मेरी उस प्यारी लताका मूलोच्छेद कर देता है । इसको भी दयामय ! तुम्हीं देखना । तब विभो ! क्या इसी तरह अथाहमें डुबो दोगे ? क्या इस असहायको इसके आर्तनादपर अपनी चितवनकी सान्त्वना न दोगे ? विभो ! सब कुछ सह लूँगा । संसारकी घृणा, दुःखमें तिल-तिल घुलना, हमारे अस्तित्वका विनाश, सबकुछ प्रसन्न मनसे खेप दूँगा, किन्तु करुणामय ! दुखियाके धन ! अनाथोंके नाथ ! अपने चरणसे मुझे मत फेंकना । यही मेरी अन्तिम अंभिलाषा, अन्तिम तृष्णा, अन्तिम साधना और अन्तिम भीख है ।

तुम्हारा ही

दिनांक १३.२.३४

मेरे सर्वस्व !

आशाकी उस महानिशामें अपनी इस बीस वर्षकी आयु बिता चुका हूँ। कितने दिन और बीतेंगे, यह ज्ञात नहीं। जीवनका यह क्षुद्र स्रोत अंधकारकी बालुका–राशिमें लुप्त होने जा रहा है। सब कुछ खो चुका हूँ। अवशेष है तुम्हारा विश्वास। तब मेरे प्राणाधार ! और कितने दिन जलना होगा। जो हो विभो ! मुझे इसका दुःख नहीं है। मैं तुम्हारे विधानमें ही अपने मंगल-अंतका स्वप्न देख रहा हूँ। देखना दयामय ! केवल दृष्टि रखना कि जिससे शैतान मेरे इस विश्वासकी भीतको नष्ट न कर सके।

तुम्हारा ही



दिनांक १४.२.३४

अनाथोंके नाथ !

जीवनका क्षुद्र स्रोत कितना सुन्दर कितना मधुर और कितना आकर्षक है ! संसारका प्रत्येक प्राणी इसका एक कण पीकर अपनी प्रचंड तृष्णाकी शांति चाहता है, पर आकुल पिपासा शांत होनेके बदले और भी आकुल हो उठती है। मैं भी संसारका अपवाद नहीं हूँ। मैं अधम भी इन्हीं भावनाओंसे प्रेरित होकर डूब रहा हूँ। नाथ ! दया करो। मुझ दु:खीको एक बार अपना प्रेमपथ दिखा दो। सचमुच हताश हो गया हूँ। आओ मेरे सर्वस्व !

तुम्हारा ही

मकरन्द

दिनांक १५.२.३४

हृदयधन !

सुना है, प्रेमवल्लरी ममत्व-प्रवाहसे सिंचित होकर उदय लेती है, पर इसका अवसान विश्व-भावनामें है। मेरे प्राणेश ! इन्हीं विचारोंको लेकर बढ़ा था, पर पथ भूल गया और प्रचंड अग्निमें गिरकर आज नष्ट हो रहा हूँ। हमारी तन्द्रा टूट गयी है। हमारे कामना-कुसुम म्लान होकर धूलमें गिरकर अंतिम साँस ले रहे हैं। सब कुछ चला गया। रहा है तुम्हारा आशा प्रदीप। न जाने यह भी प्रवृत्तियोंके चंचल झकोरोंमें पड़कर कब बुझ जायगा। अन्तस्थलकी वेदनाओंका इतिहास भी इसी प्रदीपकी अंतिम शिखाके साथ ही अदृश्य हो जायगा। क्या कहूँ ? जो सर्वज्ञ है, उससे क्या छिपा है।

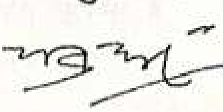
तुम्हारा ही



करुणामय ! दिनांक १६.२.३४

निर्झरिणीकी तरह मूक वेदनाओंको लेकर अनन्तमें मिलनेके लिये आगे बढ़ रहा हूँ। मेरे जीवनके एकान्त और नीरव इतिहासके साक्षी एकमात्र तुम्हीं हो हृदयेश ! सुखकी कल्पना मैंने संसारकी मोह-कामनाओंमें की थी, पर मेरी आशालतापर पानी फिर गया। सुमन अभी विकस भी न पाये थे कि कीटोंने उनका सर्वनाश कर दिया। अच्छा ही हुआ। मैं अधम हूँ, तुम अधमउधारण हो। अधमको ज्ञान नहीं होता, अतः तुमने मेरी नैया हल्की कर दी, अन्यथा डूब जाता। फिर भी हूक सी उठती है। तुम जानते हो, कितना परिश्रम मैंने किया। सब विफल हुआ। हृदयकी आहके रूपमें तुम इसका आभास पाते होगे। संसार तो हँसता है। दुखियाकी करुण पुकार संसारके लिये मनोविनोदकी सामग्री है, अतः जीवनधन ! उलाहना देना भी छोड़ दिया। केवल हमारी आहें, तुम्हारी दया; ये ही प्रमाण होंगे। मैं मंचसे विलग हो जाऊँगा। रह जायगी उसकी स्मृतियाँ, पर कहाँ ? किसके हृदयमें ?

तुम्हारा ही



दिनांक १७.२.३४

हृदयेश !

अन्तरात्माकी करुण पुकारका मूल्य मैंने नहीं समझा। उसकी अवहेलना की। उस दिन विश्वकी वास्तविकताका किंचित् भी ज्ञान न था। सोचता था, यही है मानव–जीवनकी उपयोगिता। उसीमें तन्मय होकर विश्वरूपका दर्शन करना चाहा, पर विश्वेश ! तुमने आघात किया। विनाशका अभिनय मैंने प्रत्यक्ष देखा। स्पष्ट देख ली अपनी भूल। उसी दिनसे लौट रहा हूँ। नया पथ ! नया उद्देश्य !! नयी भावनाएँ !!! आज मैं नया हूँ, फिर भी ठीक पता नहीं, कहाँ जाकर टिकूँगा। पद-पदपर फिसल रहा हूँ। मेरे प्यारे ! दया करो। अधमको उबार लो।

तुम्हारा ही



दिनांक १८.२.३४

प्राणेश !

आकुलताकी चरम सीमाको पार कर गया हूँ। संसारसे तिरस्कृत अन्तर्दाहोंकी प्रचंड ज्वालामें जलता हुआ अन्तिम समयकी बाट जोह रहा हूँ। मेरे प्राण सचमुच ही इस अस्थि–पिंजरको त्याग करनेके लिये एकान्त भावसे प्रस्तुत हैं, पर तेरा विधान अमिट है। पता नहीं, मेरे सर्वस्व ! कितने दिन और इसी तरह बिताने पड़ेंगे।

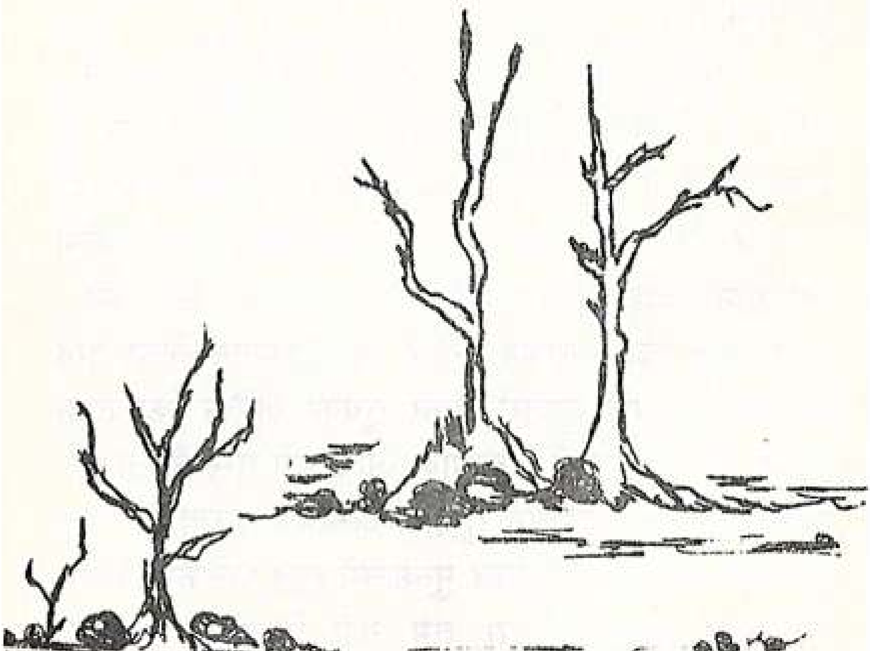
दुखियाके धन !

स्मृतियाँ आज भी अठखेलियाँ करती हुई आती हैं। आज भी वे मेरे इस क्षीण पिंजरको देखनेके लिये उतने ही उल्लासके साथ आती हैं। उनका शृंगार भी ज्यों–का–त्यों है, पर है नहीं केवल मेरा हृदय। वह कालकी कराल चक्कीमें पिस गया। वह टुकड़े-टुकड़े होकर अनन्तमें मिल गया। उसका कोई चिह्न अवशेष नहीं है। मैं हृदयहीन होकर तुम्हें पुकारता हूँ। प्रात:कालसे लेकर सूर्यकी अंतिम किरणतक तुम्हारी बाट जोहता हूँ। संध्याके आवरणमें तुम्हें ढूँढ़ता हूँ। चन्द्रदेवकी शुभ्र चाँदनीमें तुम्हारा अन्वेषण करता हूँ। इस तरह फिर बाल सूर्यके पवित्र मुस्कानमें तुम्हें पानेकी आशासे उन्मत्त हो पड़ता हूँ, पर तुम नहीं मिलते। जो हो,

अन्तर्यामी ! अंतिम साँसतक ढूँढूँगा । अन्तिम किरणतक बाट जोहूँगा । तुम्हें भी पूरा अधिकार है । जैसा समझो, करो ।

तुम्हारा ही





दिनांक १९.२.३४

हृदयेश !

नहीं आओगे ! आओगे ही क्यों ! जिसके पास हृदय नहीं, उसके पास तुम नहीं आओगे, क्यों कि तुम्हारा नाम तो हृदयेश है । संभव था, इस नियमका अपवाद होकर हमपर दया करते, पर मैंने इसका द्वार तो सर्वदाके लिये बंद कर रखा है । आजीवन तुमसे वंचना की । नहीं जानता, मेरा वर्तमान जीवन भी प्रवंचनाकी पराकाष्ठा हो, अत: मुझ ऐसे अधमको कितना भी कष्ट दिया जाय, थोड़ा है । पर अधमउधारण ! सिवा तुम्हारे और हमारी गति नहीं । नैराश्यके भीषण अंधकारमें तुम्हीं एक मात्र सहचर हो । अन्त:करणकी मार्मिकताका आभास, सर्वेश ! तुमसे छिपा नहीं है । सुन लो मेरी कातर प्रार्थना । अधम अंतिम समय ही आया है, पर आया है तुम्हारे पास । तुम समदर्शी हो । अधमोंपर विशेष कृपा रखते हो । नाथ ! मैं तेरा हूँ, तुम मेरे हो । कितना भी रुलाओगे, पर तुम्हें नहीं छोड़ूँगा । दीनकी आशा तुम हो । विश्वेश ! क्षमा कर दो । मिल जाने दो मुझे तुम्हारी अनन्त भावनामें । इन मुट्ठी भर अस्थिसमूहोंमें फिरसे नयी ज्योति जगा दो ।

तुम्हारा ही

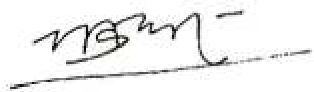
चक्रधर

दिनांक २०.२.३४

जीवनधन !

वेदनाओंकी समाधिपर अंजलि अर्पण करने जा रहा हूँ। तुम्हारा विधान अचल है, अमिट है, अत: निशाके प्रगाढ़ अंधकारमें भी तुम्हारी मोहिनी प्रतिभाका आभास हमें देखना पड़ेगा। यही कारण है कि जा रहा हूँ अंजलि देने। अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे भीख माँगता हूँ कि तुम इसके साक्षी रहना। अश्रुके प्रेमवारिसे ही अर्घ सजाऊँगा, पर ये हैं दूषित। इसलिये दुखियाके धन ! बिखेर देना अपनी कमनीयताका एक कण। चमक पड़ेंगे ये जलकण। मैं भी मेरे प्राणेश ! इसमें अन्तिम बारके लिये अपना प्रतिबिम्ब देखकर अनन्तकी ओर प्रस्थान करूँगा।

तुम्हारा ही



दिनांक २१.२.३४

अनन्त !

अनन्तकी छायामें सोता हुआ भी मनुष्य स्वप्नमें भी अनन्तकी सार्थकताका आभास नहीं पाता, वरन् जीवन तरंगोंमें बहता हुआ प्रवृत्तियोंसे प्रेरित होकर अभिलाषाओंका प्रासाद निर्माण करता है। आकाश–कुसुमका अकथनीय आनन्द अनुभव करता है। यह है महान आश्चर्य !

पर मेरे जीवनधन ! सब कुछ जानता हुआ मैं भी उसी पथका पथिक हूँ। मैं हूँ नराधम। नैराश्यके महान अंधकारमें पथ भूल गया। असहाय हो गया हूँ। डूब रहा हूँ। आओ मेरे प्रियतम प्राणेश ! दुखियाके धन ! आओ।

तुम्हारा ही



दिनांक २२.२.३४

सर्वेश !

आत्माका आह्वान ही जीवनके अंधकार-पथके लिये प्रदीप है । इसीकी ज्योतिमें मानवताका दर्शन होता है । इसीके सहारे मनुष्य अथाह अपरिमित भवसागरमें लड़कर विजय पाता है, पर मैं वंचित हूँ उस पथ–प्रदर्शकसे । मोह तथा प्रवृत्तियोंके आवरणमें पड़ा हुआ इनके प्रलोभनोंको ही मैं आत्माका पवित्र संदेश मान लेता हूँ। इसी पथसे चलकर आज फिर पछता रहा हूँ। मेरे जीवनधन ! लगा दो पाल मेरी क्षीण नैयामें । मैं फिर तरंगोंको छिन्न–भिन्न करता हुआ तुममें मिल जाऊँगा । आओ दुखियाके धन !

तुम्हारा ही



दिनांक २३.२.३४

सर्वज्ञ !

अभिलाषाकी एक तरंग आयी । मैं भावनाकी पवित्र मंदाकिनीमें डुबकी लेने लगा । इच्छा थी इसीमें अपना अस्तित्व मिटा डालूँ, पर हुआ क्या ? हिलोरे आये । वे बड़े ही मधुर थे । उनकी कमनीयताकी ओर आकृष्ट हो गया । बहने लगा उधर ही । उसमें भी तुम्हारी ज्योति थी । उसमें भी तुम्हारे पवित्र मुस्कानकी छटा देख पड़ रही थी, पर मैं बढ़ रहा था उस ओर और तुम हट रहे थे इस ओर । इसी तरह मैं एक क्षुद्र स्रोतमें आ गिरा हूँ और तुम हमसे दूर हो गये हो । मेरे सर्वस्व ! फिर भी उस तरंगको एक हलका ला दो, जिससे मैं बह चलूँ अनन्तकी ओर ।

तुम्हारा ही

दिनांक २४.२.३४

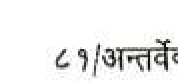
दुखियाके धन !

तुम हँस रहे थे । दस वर्ष पहलेकी गाथा है । संसारसे विरक्त हो उठा । तुममें मिल जानेके लिये आकुल हो गया । सारी शक्ति लगा दी । मेरा सीमित ज्ञान भी कल्पनाके स्रोतसे भर उठा । असारताका दर्शन मैंने प्रथम बार किया × × × कर्मयोगका त्याग किया × × × ध्यान योगकी उपासना की । मेरे प्यारे ! शोणितके तप्त बूँदोंको लेकर तुम्हारी अर्चना की । हृदयका सब कुछ तुमपर न्योछावर किया, पर तुम नहीं मिले । एक आदेश मिला और वह था संसारमें प्रवेश करनेका प्रोत्साहन । सचमुच, मेरे सर्वज्ञ ! शिशुकी तरह अबोध था । जिस समयका इतिहास है, उस समय मेरे प्राणेश ! मुझमें तुमसे प्रवंचना करनेका साहस न था, अतः मैंने हृदयसे ही इस आदेशका अभिनन्दन किया । × × × × मैं तुमसे दूर हट रहा था, पर जानता नहीं था । बढ़ रहा था विनाशकी ओर । तुम्हारी ओर दृष्टि फेरी । मेरे आराध्यदेव ! तुम हँस रहे थे । समझा, यह प्रोत्साहन है । इस तरह बढ़ता ही रहा । पथ अंधकारमय होता जा रहा था । आत्माकी करुण पुकारकी अवहेलना की। और भी आगे बढ़ चला

भयानक ! अंधकार !! कंटकाकीर्ण !!! ××× पीछेकी ओर प्राण लेकर भागा ××× शैतानका प्रलोभन पीछे था। नहीं बच सका ××× आगे बढ़ा। ठेस लगी और पुन: पीछेकी ओर ××× पुन: कामनाका नाटकीय अभिनय प्रारम्भ हुआ। इस बार बहुत आगे बढ़ गया ××× आज इसीलिये नैराश्यकी भीषण चक्कीमें पिसकर कराह रहा हूँ। आशाका शुभ्र प्रदीप बुझ गया है। अकथनीय वेदनाओंका इतिहास पीछे पड़ा हुआ है। मेरी तरह वह भी कातर है। एक प्रश्न है, मेरे प्राणाधिक ! भले ही संसारकी दृष्टिमें नरककीट हूँ, संसार मुझे अधम समझता है, पर मेरे प्रियतम ! तुम सर्वज्ञ हो। तुम्हारे सामने मेरे हृदयकी समाधि है। तुम्हारे चरणोंपर गिरकर पूछता हूँ। बताओ मेरे प्राणेश ! सचमुच अधम न होनेपर भी मेरे लिये इतना कठोर दण्ड क्यों ? इस निर्बलके लिये इतना कठिन विधान क्यों ?

मेरे सर्वस्व ! एक दिन था उल्लासकी चरम सीमा पार कर गया था। उस दिन भी देखा था तुम हँस रहे थे। आज तिल-तिलकर जल रहा हूँ, पर देखता हूँ, तुम आज भी हँस रहे हो।

तुम्हारा ही



दिनांक २५.२.३४

मेरे प्राणेश !

प्रकृतिकी नीरवतामें शांति निहित है, इसे मनुष्य समझते रहनेपर भी भूल करता है। आलोकका प्रत्यक्ष दर्शन करनेपर भी उसके प्रतिकूल चलकर अपनेको नष्ट करनेमें ही अपनी उपयोगिता समझता है। तुम्हारी विभूतिका अनादर मेरे सर्वस्व ! मैंने भी किया है। उसीका फल है कि अन्तर्दाहकी ज्वालामें जलता हुआ अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा हूँ। पता नहीं, कब चरणोंमें स्थान दोगे। करुणामय ! अन्तिम समयमें भीख माँग रहा हूँ। दिखा दो पथ नाथ ! अधमकी अन्तिम विनय सुन लो।

तुम्हारा ही

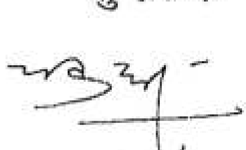


दिनांक २६.२.३४

मेरे जीवनधन !

आज फिर भी वसंत प्रकृतिकी गोदमें किलोलें मार रहा है। नूतन किसलयोंसे परिवेष्ठित वन्य लतायें सुहागरात मना रही हैं। मन्द समीरकी साँय-साँय ध्वनिमें प्रकृतिका आह्लाद बिखर पड़ रहा है। ठीक एक वर्ष पहले मैंने प्रकृतिको इसी रूपमें निहारा था। उस समय मैं कल्पनाके अनन्त स्रोतमें बह रहा था। अविराम गतिसे चलकर सुख स्वप्नमें विभोर हो गया था। एक-एक करके बारह महीने बीत गये। आज मैं दूसरा हूँ। सुख स्वप्न टूट गया है × × ×। मेरे प्यारे ! उस दिन कामनाएँ की थीं, तुमसे याचना की थी। तुमने मुझे दिया था × × ×। आज, मेरे सर्वस्व ! तुम्हारी वही वस्तु और अपनेको तुम्हें समर्पण कर रहा हूँ। स्वीकार कर लेना दीनबंधो !

तुम्हारा ही



दिनांक २७.२.३४

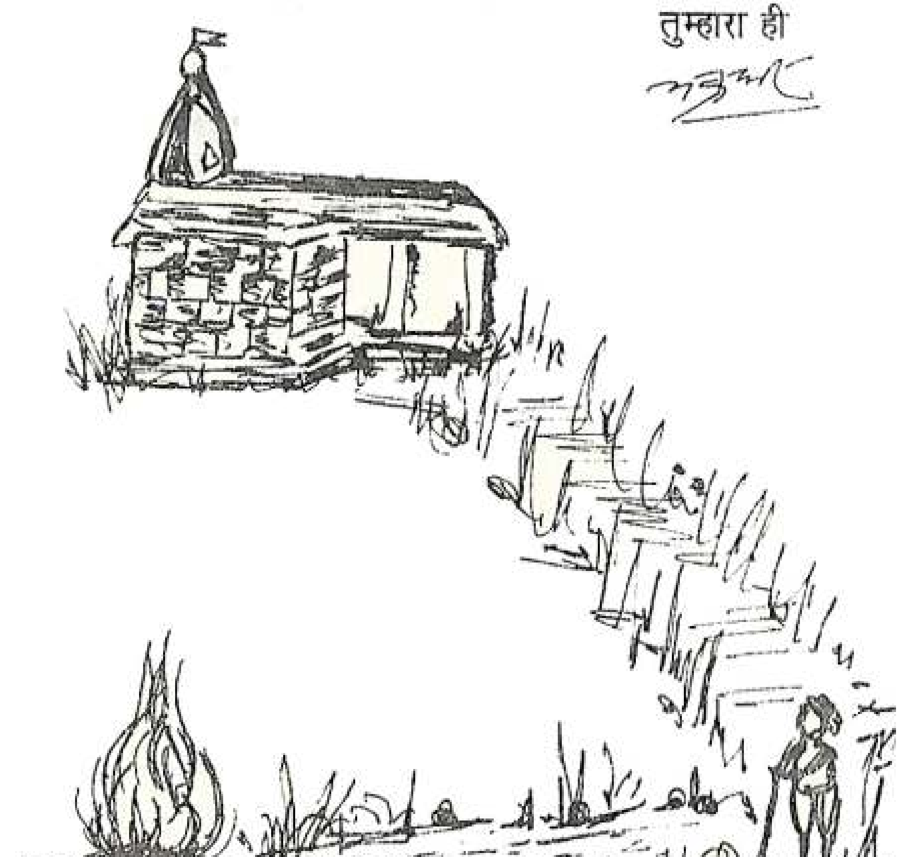
मेरे हृदयधन !

कलकत्ता होलिकोत्सवमें उन्मत्त हो रहा है । जहाँ एक ओर बिहार श्रीहीन होकर, प्रकृतिके वक्षस्थलपर अपने सहस्रों संतानकी बलि देकर सिसक रहा है, वहाँ दूसरी ओर आनन्दका सागर उमड़ पड़ रहा है । विधवा माताओंकी करुण पुकार, अबोध शिशुओंके करुण क्रन्दन, असहायोंकी आहोंका मूल्य, ये कलकत्तावासी नहीं समझ सके । शिथिलताका नाम नहीं है । पूर्ण उल्लाससे होली मनायी जा रही है । हाय रे मनुष्यकी क्षुद्र उमंग !

तुम जानते हो मेरी व्यथा । मेरी तरह ही आज बिहार दु:खित है । कारण भले ही भिन्न है । जीवनका सब कुछ तुम्हें दे दिया है । कलुषित मनको भी मैंने तुम्हारे चरणोंमें अर्पण कर दिया है । तेरा ही विधान मेरा कार्यक्रम है । बताओ नाथ ! मैं इन दु:खी भाइयोंके लिये क्या कर सकूँगा । मेरी क्षुद्र अभिलाषा × × और मेरी असमर्थता तुमसे छिपी नहीं । तब, मेरे प्राणेश ! क्या केवल रोना ही होगा । एक बार मेरी कलुषित प्रवृत्तियोंकी ओर देखो । सर्वज्ञ ! रत्ती-रत्ती जानते हो । तुमसे वंचना असंभव है । तुम्हारी दयाका एक कण मुझे बचा लेगा । बल दे दो,

साहस दे दो और दे दो अपनी पवित्र मुसकानकी एक झाँकी। अधमउधारण ! बता दो मेरा पथ। इच्छा करनेपर भी फिसल रहा हूँ। सर्वेश ! बता दो ! क्यों इतना कष्ट दे रहे हो ! क्या दीनकी कातर पुकार न सुनोगे ?

तुम्हारा ही



दिनांक २८.२.३४

सर्वेश !

अन्तरात्माका एक-एक कण तुम्हारी कल्पनामें आह्लादित हो जाता है । प्रवृत्तियोंका उन्माद अभी भी ज्यों-का-त्यों है, फिर भी इच्छा होती है पुनीत निर्झरकी तरह विश्वसागरमें मिल जाऊँ । कितना परिश्रम किया, लेकिन दीनबंधु ! इन पहेलियोंको समझ न सका । बताओ, मेरे प्राणेश ! सचमुच मैं क्या हूँ ? अभीतक अपनेको न समझ पाया । एक बारके लिये ही, मेरे सर्वस्व ! मेरी वास्तविक स्थितिका दिग्दर्शन करा दो ।

तुम्हारा ही

दिनांक १.३.३४

मेरे प्राणाधार !

जीवन क्षणभंगुर है, यह स्पष्ट ज्ञात रहनेपर भी आशाके अभेद्य पाशसे मुक्त नहीं हूँ। लालसाओंका दमन नहीं कर सका। आज भी प्रवृत्तियोंकी मधुर झंकारमें स्वर्गीय आनन्द लूटनेका प्रयास करता हूँ। मानवताके गूढ़ रहस्यका भेद आज भी न पा सका। विचार स्रोतका उद्‌गम आज भी मलिन है। आजतक भी विश्वकी महानताका अनुभव न कर सका। सर्वज्ञ ! क्या बताऊँ, पता नहीं अधोगतिकी चरम सीमा क्या होगी ? बचाओ, बचाओ, मेरे प्राणनाथ !

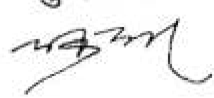
तुम्हारा ही

दिनांक २.३.३४

करुणेश !

मधुर प्रेमकी भावनामें ही तुम स्थित हो । अनन्य प्रेमकी उपासनामें ही तुम्हारी कमनीयताकी झाँकी मिल सकती है, पर मैं भग्न-हृदय प्रेम करना कहाँ जानूँ । यही कारण है, सर्वेश ! जिससे जीवनकी ये अन्तिम घड़ियाँ हाहाकारसे परिपूर्ण हैं । मेरे प्राणेश ! सब कुछ खो गया । दुखियाके धन ! एक मात्र तुमपर अवलम्बित हूँ । आओ, मेरे प्राणाधार ! पार लगाओ ।

तुम्हारा ही



दिनांक ३.३.३४

प्राणाधार !

मेरी आहोंका मूल्य नहीं है। संसारसे इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। मेरा यह करुण क्रन्दन अरण्य रुदन है, पर मेरे प्यारे। तुम तो समदर्शी हो। अधमोंकी गति तुम्हारे हाथ है। तुम्हें सब कुछ दे दिया है। इन तुच्छ आहोंको भी तुम्हारे चरणमें ही अर्पण करता हूँ। अधमउधारण ! मेरी यह भेंट स्वीकार कर लेना।

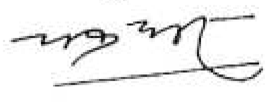
तुम्हारा ही

दिनांक ४.३.३४

मेरे सर्वस्व !

पाँच दिन पहले देखा था —— निशा-सुन्दरी चंद्रदेवकी शुभ्र चाँदनीमें हँस रही थी । चँद्रदेव भी प्रेमोन्मत्त होकर आलोककी माला दान करने लगा । प्रतिदानके इतने मधुर चित्रकी कल्पना मैंने जीवनमें पहली बार की । यह थी उनकी सुहागरात । लेकिन आज चंद्र क्षीण हो रहा है । आज वह व्याकुल नहीं । निशा भी मलिन हो गयी है । वेदनाओंकी मारी दुखियाने श्याम वस्त्रका आवरण डाल लिया है । संभव है, इस आवरणमें जी खोलकर रो सके । × × × × यही देखता हूँ और आह मारकर बहने लगता हूँ । × × × निश्चित है, मेरे प्रियतम ! तुम्हारा विधान अमिट है ।

तुम्हारा ही

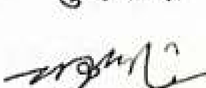


दिनांक ५.३.३४

दुखियाके धन !

चंद्रदेवके इसी क्षीण आलोकमें अपने भाग्यका निर्णय करने बैठता हूँ। सोचता हूँ, मेरे दयामय ! तुम अगर रूठ गये, क्या होगा तब इस नारकीय जीवनका ? × × × मेरे प्राणेश ! विचलित हो उठता हूँ। अधकार ही नजर आता है। मैं अधम इस बातको भूल जाता हूँ। भूल जाता हूँ, मेरे प्राणेश ! हमसे अधिक मेरे लिये तुम उत्सुक हो। अनाथोंके नाथ हो, यह जानकर भी रोने लगता हूँ। आजीवन मेरी रक्षा की है, भविष्यमें भी करोगे, यह स्पष्ट रहनेपर भी सांसारिक साधनोंका आश्रय लेता हूँ। तुमपर अचल विश्वास ही सदुपयोग तथा सफलता है, यह प्रत्यक्ष देखनेपर भी अस्थिर हो जाता हूँ। जीवनधन ! आकांक्षाकी चरम सीमा पार करनेपर ही तुमको इस अधमने पहिचाना। दया करो मेरे प्राणाधार !

तुम्हारा ही



दिनांक ६.३.३४

मेरे प्राणेश !

जीवनका उन्माद थम गया है। अपना नग्न चित्र मैंने देखा है। प्रवंचनाके आवरणमें रहकर तुम्हारी उपासना करनी चाही थी और इसे ही श्रेष्ठतम साधन समझा था। सोचा था, सर्वस्व ! इसी तरह किनारे लग जाऊँगा, पर तुम्हारी दया हुई। नग्नतामें असारता प्रकट हो गयी। सर्वज्ञ ! मैंने उसी क्षण उस पथका त्याग किया, पर हमारी साध न पूरी हुई। पता नहीं, इस नश्वर जीवनमें पूरी होगी या नहीं। जो हो, मेरे आराध्य देव ! मैंने तुमपर अपनेको छोड़ दिया है। विश्वास है नाथ ! इसे पार लगा दोगे।

दुखियाके धन !

तुम हमारे एक-एक कणसे अवगत हो। हृदयकी इन क्षुद्र लालसाओंको तुमपर चढ़ा रहा हूँ। मेरी अंतिम प्रार्थना है, मैं सब तरहसे डूब रहा हूँ। एक मात्र तुम्हीं हमारी रक्षा कर रहे हो। तुम्हारे कठोर और अमिट विधानमें जलकर मैं दूसरा हूँ। इस बार दया कर दो। × × × × तुम्हारे शरणमें मैं पथ-भ्रष्ट न होऊँगा। आर्तहरण ! मेरे लिये तुम्हीं एक मात्र सहचर हो। उबार लो नाथ !

तुम्हारा ही

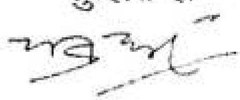


दिनांक ७.३.३४

मेरे प्यारे !

उषाकी शांत कमनीयतामें कभी–कभी विभोर हो पड़ता हूँ। इच्छा होने लगती है कि मैं भी यदि इसी तरह शांत, नीरव रहकर प्रकृति प्रेमकी उपासना कर सकता। × × मेरे हृदयधन ! व्याकुल हो जाता हूँ अपनी हीनतापर, कराह उठता हूँ अपनी असमर्थतापर। आओ, मेरे कर्णधार! आओ। एक बारके लिये प्रेमभरी चितवनसे निहार दो। बहा दो प्रेमकी नैसर्गिक धारा, जिसमें बह जाय हमारी नश्वरता कलुषत। मैं तब अमर हो जाऊँगा मेरे प्राणेश !

तुम्हारा ही



दिनांक ८.३.३४

मेरे प्रियतम !

मंद समीरकी साँय--साँय ध्वनिमें तुम्हारा संदेश सुनता हूँ - 'उत्थान और पतनकी जटिलताका ज्ञान ही अनन्त–पथका आलोक है' । इसे सुन लेनेपर क्षण भरके लिये मेरे प्राणेश ! इसमें तन्मय हो जाता हूँ और देख लेता हूँ तुम्हारी वह पवित्र मुस्कान । फिर दूसरे ही क्षण प्रवृत्तियोंका तांडव आरंभ होता है और समीरकी तरह ही मेरा यह भाव प्रचंड बवंडरमें विलुप्त हो जाता है । दुखियाके धन ! यदि एक बारके लिये भी मैं भग्न तारोंकी वीणापर बजा सकता इस मधुर लहरीको !

तुम्हारा ही

दिनांक ९.३.३४

प्राणाधिक !

विश्व–मंचपर आये आज बीस वर्ष हो गये । आज भी प्रकृति उसी तरह शांत नीरव है । आज भी विश्वस्रोत अविराम गतिसे अनन्त महासागरकी ओर बह रहा है । विश्व संग्राम आज भी असंख्य योद्धाओंकी समाधि निर्माण करनेमें तल्लीन है । मेरे प्राणेश ! इसी तरह मेरे जीवनकी यवनिका एक दिन गिरा दोगे । संभवत: उस समय भी प्रकृतिका सौन्दर्य उतना ही मधुर, उतना ही मूक रहेगा ।

तुम्हारा ही

दिनांक १२.३.३४

मेरे हृदयधन !

तुम्हारी अनन्त लीलामें पतंगकी तरह खेल रहा हूँ। आजीवन तुमने हमको विनाशसे बचाया है। एक बारके लिये, मेरे प्राणेश ! मुझे प्रेमभरी चितवनसे निहार दो। तुमपर विश्वास ही, दुखियाके धन ! जीवनकी चरम साधना है। तुम्हारी अखण्ड अनुभूतिमें अपना अस्तित्व मिटा डालूँ, हमारी इस लालसाको भी तुम्हारे चरणोंमें अर्पण कर रहा हूँ।

प्रियतम ! मैं तेरा अनुचर हूँ, इस विश्वासको दृढ़ कर दो। हटा दो मेरे हृदयसे ममत्वका वह भाव। अभिमानका तांडव नाथ ! विनाशकी ओर घसीट रहा है। मेरी रक्षा करो आर्तहरण !

अनाथोंके नाथ ! तुमने हमारी लाज रख ली। जो भी हो नाथ ! यह काम तुम्हारा था, मैं था साधन मात्र। मुझ अधमके पास कुछ नहीं है कि तेरी अभ्यर्थना करूँ। तुम्हारा अनुचर तुम्हारा काम कर सका, इसमें विचित्रता नहीं। फिर भी नाथ ! सेवकको तुमने कलंकसे बचा लिया, इसके लिये क्या प्रतिदान दूँ ? दे नहीं सकूँगा प्यारे ! मुझ अधमके पास कुछ नहीं है, जो दे सकूँ। अस्थिमात्र अवशेष है, इसे (×

× × ) अवशेष है तो वह भी चढ़ा दे रहा हूँ तुम्हारे चरणोंपर । क्षुद्रकी इस भेंटको चरणमें रहने देना दयामय ! प्रत्येक कणसे तुम अवगत हो । फिर मेरे सर्वस्व क्या करूँ ? देख लेना हमारी विकलता । मेरे पास शब्द नहीं, जिससे मैं × × × × अपने उन भावोंको अंकित कर सकूँ । सब तरह हीन मैं तुम्हारे सामने खड़ा हूँ । दयाकी भीख दे देना मेरे प्यारे !

जीवनमें दुखियोंके लिये केवल एक मात्र सहारा तुम हो । दीनोंकी आशा केवल तुम्हीं हो । जिसका कोई नहीं, उसके तुम हो । अधमोंपर तुम्हारी दया अपार रहती है । दु:खमें पिसे हुएको तुम्हीं अभयदान देते हो । निराशकी आशा, समदर्शी ! मेरे प्यारे ! मैं अधम, क्या कहूँ ! मैं भूल गया, पर तुम नहीं भूले । मेरे सर्वस्व ! भग्न हृदयकी समाधिके प्रत्येक कणसे कहता हूँ –'तुम्हारी जय हो' ।

तुम्हारा ही

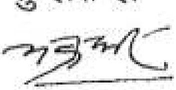


दिनांक १६.३.३४

हृदयधन !

समुद्रतरंगोंका उन्मुक्त भाव देखकर हृदयमें विचार उठने लगता है - कदाचित् मैं भी इतना ही स्वच्छन्द रहकर तुममें मिल सकता। मेरे सर्वस्व ! सोचता हूँ, क्यों मेरा जन्म हुआ। मुझ ऐसे अधमकी आखिर क्या गति होगी ? नाथ ! धैर्य छूटने लगता है, पर तुम्हारी याद पड़ जाती है। तड़प जाता हूँ मेरे प्राणेश ! जिससे आजीवन वंचना की, उसका मुझपर इतना स्नेह ! मेरे दुखियाके धन ! क्या बताऊँ ? हृदयकी समाधिपर खड़े होकर केवल कह रहा हूँ कि तुम करुणामय हो। अन्तिम साँसतक कहूँगा कि तुमपर अचल विश्वास ही सफल जीवनका अन्यतम साधन है। लिख दे रहा हूँ सर्वेश ! जिससे कदाचित् कोई भी मेरे अवसानके पश्चात् इन पृष्ठोंसे उपकृत हो सके।

तुम्हारा ही



दिनांक १९.३.३४

दुखियाके धन !

गया था तुम्हें ढूँढ़ने । तुम्हें देखा, तुम हँस रहे थे । दूसरी ओर देखा पाशविकताका तांडव नृत्य । तुलना करने लगा मेरे प्राणेश ! समझता था मैं अच्छा हूँ । मुझे था अपने पर गर्व, पर वास्वविकता प्रकट हो गयी । अभी भी विनाशकी ओर हूँ । हाय रे जीवन ! क्षुद्र लालसाओंका अन्त न कर सका । प्राणोंकी आहुति देकर भी तथ्य न समझ सका । बताओ, मेरे प्राणेश ! मुझ अधमको क्या करोगे ? संसारकी दृष्टिमें हीन् हूँ । मेरे सर्वस्व ! क्या तुम भी मुझ अभागेकी सहायता न करोगे ?

तुम्हारा ही

दिनांक २०.३.३४

मेरे आराध्यदेव !

दीपकी क्षीण रेखाकी तरह हँस रहा हूँ। अपनी असारतासे अनभिज्ञ रहकर न जाने कितने पतंगोंका सर्वनाश किया है। आज भी मेरे प्राणेश ! क्षुद्र धूमका ही आश्रय ले रखा है। न सम्हल सका, हृदयधन ! अब क्या होगा ? भविष्यकी भीषणता तांडव कर रही है और मैं चिर विश्रामकी प्रतीक्षामें हूँ। जो हो, दुखियाके धन ! जीवनकी ये अंधकारपूर्ण विकल और कातर घड़ियोंको चाहता हूँ कि तुम्हारी अर्चनामें लगा दूँ। सहायता करो नाथ !

तुम्हारा ही



दिनांक २.४.३४

मेरे प्राणेश !

जीवनमें कितनी बार तुम्हें याद किया और भूल गया, इसे केवल तुम ही जानते हो । इस प्रवंचनाका अतीत इतिहास मेरे प्यारे ! मैं भूल–सा गया हूँ । तुम्हें ज्ञात है जीवनधन ! भग्न हृदयके खंडहरमें अनुरागकी तरंगें उठती हैं, पर अकर्मण्यताकी जटिलतामें शीघ्र ही अन्तर्निहित हो जाती हैं । इसी तरह, दुखियाके धन ! जीवनके बहुमूल्य अवसर हमने खोये हैं । पता नहीं, भविष्य कितना करुणाजनक होगा । जो हो, अनाथोंके नाथ ! चिर विश्रामके पहले कलंककी कालिमा मेरे इस जर्जर शरीरके उन्मुक्त, पर वेदनामय मुखपर न लगे, इसीकी व्यवस्था कर देना । आजकी अर्चनामें लीलामय ! यही कामना है ।

तुम्हारा ही

दिनांक ३.४.३४

मेरे प्रियतम !

जीवनकी उन्मुक्त तरंगोंका वेग थमता–सा देख पड़ रहा है । देख रहा हूँ सम्मुख अनन्त बालुका–राशि । संभवत: यहीं जीवनकी क्षुद्र स्मृतियाँ एक आलोकमय क्षीण रेखाके रूपमें विश्राम लेती रहेंगी । असंख्य अभागोंका करुण इतिहास इसी बालुका-राशिमें निहित देख पड़ रहा है । मेरा भी अवसान यहीं हुआ चाहता है । नाथ ! क्या कहूँ ? यदि तुम भी अवसानकी इस करालतामें अपनी मधुर मुस्कानकी छटा फिर भी हमें दिखा देते !

तुम्हारा ही



दिनांक ४.४.३४

प्राणाधिक !

विश्व–वीणाके टूटे तारोंमेंसे मैं भी एक हूँ। वीणा झंकरित हो रही है, पर मैं योगदान नहीं कर सकता। मुझमें वह मधुरता नहीं, वह सरसता नहीं। अवशेष हैं केवल तारके वे खंड, जो कालकी जटिलतामें अपना सौन्दर्य तथा गुण–विशेष खोकर गायककी उल्लासमयी दृष्टिमें हेय हो उठे हैं। मेरे लीलामय ! अब क्या करोगे इन भग्न तारोंको लेकर ? इसे जोड़ना तुम्हारे लिये सहज है, सरल है, पर ऐसा न करना मेरे आराध्य देव ! रहने दो इसे ऐसे ही। तुम्हारी अमृतमयी चितवनकी देखरेखमें इसे कष्ट न होगा। संभवत: उसके दोषसे ही तार टूट गये हैं।

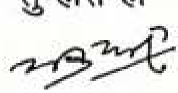
तुम्हारा ही

दिनांक १५.४.३४

मेरे आराध्यदेव !

अनुरागकी पुनीत निर्झरणी किलोल कर रही थी। उल्लासकी तरंगमें बह चला मैं भी अनन्तकी ओर। तरंग शिथिल होती गयी और उसके साथ ही वेदनाकी धधकती ज्वालामें पड़कर उल्लास वाष्प बनकर उड़ने लगा। मेरे अन्तर्यामी ! दिन बीतत्ता जा रहा है और मैं प्रतिक्षण घाष्पमें ही परिणत हो रहा हूँ। समय निकट है, जीवनधन ! जब कि मेरी सत्ता मेघ रूपमें ही रह जायेगी। एक अन्तिम प्रार्थना है, दयामय ! क्षुद्र मेघका रूप न दे देना। जीवनकी इन अनुतप्त घड़ियोंकी चाहकी अवहेलना न करना मेरे सर्वेश !

तुम्हारा ही



दिनांक १६.४.३४

जीवनधन !

प्रेमका पवित्र स्रोत देखकर इच्छा हुई कि मैं भी इसके कुछ कणोंका संचयकर तुम्हारी अर्चना कर सकता, पर मेरे दयामय ! भग्न हृदयकी यह अभिलाषा भी कालकी करालतामें भस्मसात् हो गयी । तुम्हारा विधान अमिट है; मंगलमय है, यह ध्रुव सत्य रहनेपर भी मन चचंल हो उठता है । कर्मका फल भोगना आवश्यक है, अतः नाथ ! असफलता भी हमारी ही चूकके कारण है । अब दया करो प्रियतम ! जिससे अंतमें तो तुममें लीन हो सकूँ ।

तुम्हारा ही



दिनांक २७.४.३४

मेरे प्रियतम !

ज्योत्सनामयी रजनी भी दो दिन पश्चात् मलिन हो जायेगी। उसी तरह मैं भी इस अस्थि–पिंजरको छोड़कर अपनी इहलीला समाप्त करूँगा। अनन्तमें मिलना है, अतएव अनन्त पथका आश्रय लिया है। मेरे सर्वस्व ! प्रपंचमय यह अधम शरीर तुमको अर्पण करने जा रहा हूँ। अचल विश्वास है, नाथ ! इसे अपना लोगे। अन्तर्यामी ! यदि इसके साथ ही भग्नहृदयके उन किंचित् क्षुद्रतम लालसाओंकी ओर प्रेमभरी चितवनसे निहार लेते तो मैं अभागा धन्य हो जाता।

तुम्हारा ही



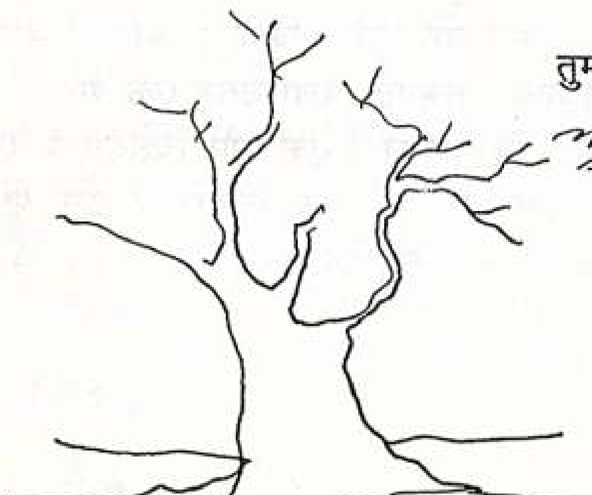
दिनांक २.५.३४

प्राणाधिक !

अतीतकी पावन स्मृतियाँ भी एक-एक कर समाधिस्थ हो रही हैं। अन्तर्वेदनासे लिप्त जीवनके वे मूक इतिहास सिसकियाँ भर रहे हैं। जीवन यवनिकाके पतनका समय भी समीप होता जा रहा है, पर मेरे प्रियतम ! न समझ सका तुम्हारी अनन्त कमनीयताके रहस्यको। नष्ट होनेके पूर्व मेरे प्राणेश ! यदि तुम मेरे उन क्षुद्र भावोंकी श्रद्धांजलि स्वीकार कर लेते।

तुम्हारा ही





दिनांक ४.५.३४

प्राणेश !

वसन्तके वे मधुमय दिन कालकी जटिलतामें अन्तर्हित हो गये । मधुकरका सुख–स्वप्न टूट गया । नलिनीके पावन आँचलका मोह भ्रमरको परित्याग करना ही होगा । अधम मधुपने नलिनीका अपमान किया था । परागका संचय, बस, इसी एक मात्र उद्देश्यको लेकर न जाने अगणित पंखुड़ियोंका सर्वनाश किया । प्रेमकी प्रवंचना करता हुआ भीषण स्वार्थ परायण हो चला था । तृष्णाकी अनन्त जलराशिमें डुबकी ले रहा था । उसी समय, करुणाधार ! तुमने उसे सचेत किया । असहाय मधुपने संभवत: पहचाना । संभवत: देखा उसने एक बारके लिये तुम्हारे कमनीय चितवनको । एक और चितवन दे देना, हृदयधन ! इस बार पार लग जायेगा । उस पावन अभिलाषाकी हत्या न करना दयामय !

तुम्हारा ही

दिनांक ५.५.३४

हृदयधन !

भग्न हृदयके खण्डहरमें अवशेष है पावन अभिलाषाओंकी समाधि मात्र। वन्य कुसुमोंका स्थान मलिन वेदनाने लिया है । दुखियाने अपने देह–अंचलसे आच्छादित कर रखा है समाधिको । अभिलाषाएँ भी चिर निद्रामें विश्राम ले रही हैं । यह है मेरे प्रियतम ! तुम्हारी मुस्कानका एक रूप । दूसरी ओर वासनामयी लालसाओंकी अग्नि आज भी उतनी ही प्रज्जवलित है । आशाका महान प्रासाद आज भी अभेद्य है । शैतान आज भी अपने विजयपर गर्व करता हुआ विध्वंसकी योजनामें संलग्न है । विनाशका पथ निकटतम हो गया है । मेरे प्राणेश ! तुम्हारी अनन्त विभूतिका यह हुआ दूसरा रूप । तुम्हारे इस सौन्दर्यकी कल्पना इस अधमने बहुत विलम्बसे की । यदि सर्वेश ! मिला देते इस अधम अस्थि–पञ्जरको उन पवित्र अभिलाषाओंसे तो यह अधम धन्य हो जाता । बहुत हुआ करुणामय ! अब दया करो प्राणनाथ ! अधमकी रक्षा करो अधमउधारण !

तुम्हारा ही

दिनांक ७.५.३४

दुखियाके धन !

आहोंका अर्घ सजाने जा रहा हूँ प्रियतम ! इस अधमके पास कुछ नहीं है । आजीवन तृष्णाकी अगम अगाध हिलोरोंमें बहता हुआ अन्तमें दयाकी याचना करने आया हूँ । पता नहीं, तुम इसे अच्छा समझते हो या बुरा । प्राणाधिक ! शून्य, निराश दृष्टिसे तुम्हारे सामने खड़ा हूँ । जैसा समझो, वैसा ही करो अधमउधारण !

तुम्हारा ही



दिनांक ११.५.३४

मेरे प्यारे करुणामय !

चन्द्रदेवके साथ तुषारकणने बड़ा आनन्द लूटा है । उसे ज्ञान नहीं था, प्रियतम ! प्रभातकी प्रथम किरणके साथ ही काल–कवलित हो जायगा । हृदय पाया था उज्जवल, अतः गर्व था उसे अपनी कमनीयतापर, अपनी महानतापर । मूर्खने नहीं सोचा था कि कुसुमोंका भी भाग्य फिरेगा । वे भी कालचक्रके भीषण घर्षणमें ही प्रस्फुटित होंगे । क्षणभंगुरतासे अज्ञात रहकर सुखस्वप्नमें विभोर हो रहा था । वही दशा अक्षरशः प्राणाधिक ! मुझ अधमकी भी है । अन्तर केवल प्राणेश ! अपनी भूल समझनेमें शीघ्रताका । पता नहीं भगवन् ! कहाँतक सत्य कह रहा हूँ । जो हो, अन्तिम समय आहोंकी डाली लगायी है । उचित मूल्य देकर इसे खरीद लेना अनन्त !

तुम्हारा ही

दिनांक १४.५.३४

मेरे प्रियतम !

क्षुद्र जीवनके वे मधुमय दिन आज भी याद आते हैं। आशा प्रदीप रजनीकी गंभीरतामें किलोल कर रहा था। निस्वार्थ प्रेमकी विवेचना कर अज्ञानने सोचा था कि पार लग जाऊँगा इसी तरह। मूढ़ प्रदीप निश्चिंत हो चला था। गर्व जनित कलुषित आनन्दसे उसका हृदय खिल रहा था। अगणित पतंगोंका उसने सर्वनाश किया। विशुद्ध प्रेमकी उस अधमने अवज्ञा की। उसे तो विश्वास ही नहीं था कि यह क्षणभंगुर है, पर प्राणाधिक ! तुम्हारा विधान अमिट है। भ्रमवश ही लोग इस ज्वलन्त सत्यको हृदयंगम नहीं करते और वैराग्यके भीषण अंधकारमें सदाके लिये धँस जाते हैं। अभागे प्रदीपकी दशा भी ठीक वैसी ही हुई। ऊषाके एक ही झोंकेने उसका सर्वस्व नष्ट कर डाला। प्रभातने विनाशके अवशेष भागको पूरा कर दिया। अब तो आकाश मेघपूर्ण है तो भी उसकी पूछ नहीं। दयामय ! एक प्रश्न है। यदि प्रेम और साधना पवित्र है तो क्या संध्याके पुनीत अंचलकी छायामें वह फिर एक बार न हँसेगा ?

तुम्हारा ही



दिनांक २५.५.३४

मेरे हृदयधन !

प्रकृतिके अनुपम सौन्दर्यका मर्म मैं न समझ सका। उस पावन नीरवताका रहस्य आज भी उसी तरह अज्ञात है। जीवनके उन सारे क्षुद्र अनुभवोंका मूल्य देकर सुलझाना चाहा इस पहेलीको, पर प्रियतम ! न पायी थाह । अन्तर्यामिन् ! अभीतक जो निष्कर्ष निकाला है, वह भी है अपूर्ण । केवल देखता हूँ कि असंख्य आत्माओंकी वेदनाएँ प्रकृतिकी इसी नीरवतामें निहित है । यह निश्चित है प्रेममय ! इसी नीरवतामें मैं भी एक दिन अन्तर्हित हो पड़ूँगा । उसके पहले इच्छा थी साधनाको तुम्हारे चरणोंमें चढ़ाकर कुछ भीख माँगना । दुखियाके धन ! मेरे कर्णधार ! मैंने माँगा है । पता नहीं, तुम इस निराश जीवनमें उन क्षुद्र कुसुमोंको फूलने दोगे या नहीं । मेरे सर्वस्व ! तुम्हें अधिकार है, जो भी चाहो, कर सकते हो ।

तुम्हारा ही

दिनांक २६.५.३४

अन्तर्यामिन् !

भग्न हृदयमें वे भाव आज भी वर्तमान हैं —— मैं निर्झरिणीकी अनन्त रागिणीका आदर्श रखकर उसीकी तरह तुममें तन्मय हो सकता, किन्तु यह हो नहीं सकता । प्रेमार्णव ! यह है स्वप्नमें कुसुमसे प्रेमके प्रतिदानकी तरह । कलुषित प्रवृत्तियोंका दास तुम्हारी एकान्त उपासना नहीं कर सकता, यह नितान्त सत्य है । तब क्या दयामय ! मुझ अभागेको भूल जाओगे ? नहीं, ऐसा तुम नहीं कर सकते। अशरणशरण ! मैं भले ही भूल जाऊँ, पर तुम न भूलोगे । तुमसे छिपा नहीं हैं करुणामय ! अथाहमें तैरते हुए भी एक मात्र तुम्हारी मधुर चितवनका ही भरोसाकर आगे बढ़ रहा हूँ । एक बारके लिये ही सर्वज्ञ ! प्रेमभरी चितवनसे निहार दो । फिर संसारका तिरस्कृत अभागा अपना वांछित पा जायगा । आशालताकी सूखती डंटियोंपर तरस खाओ लीलामय !

तुम्हारा ही



दिनांक ३०.५.३४

जगदाधार !

कभी–कभी जाग पड़ता हूँ मोह–तन्द्रासे । मंद समीरके मधुर निश्वासमें प्रगट हो जाती है संसारकी असारता । सोचने लगता हूँ कि कहाँ है वे संचित कुसुम, जिनकी कल्पनामें विभोर था ? मुझ अज्ञानको सूझी थी मेरे अनन्तधन ! उन कुसुमोंकी पवित्र माला बनानेकी । संकल्प था सर्वज्ञ ! मालाको तुम्हारे पवित्र चरणोंमें भेंट चढ़ा देनेका। संकल्प आज भी दृढ़ है, पर प्राणनाथ ! तुम्हारा विधान अमिट है । मंगलमय है तुम्हारी लीला मेरे प्रियतम ! एक बात और है । सुना है प्राणनाथ ! तुम भग्न हृदयकी पुनीत अभिलाषाओंका अनादर नहीं करते । क्या मैं भी आशा करूँ प्राणाधिक !

तुम्हारा ही

दिनांक ३.६.३४

मेरे सर्वस्व !

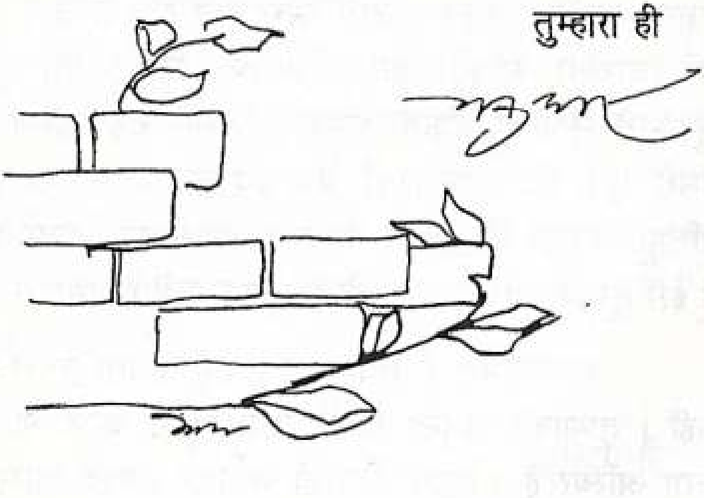
जीवनका अथक परिश्रम व्यर्थ गया । आसुरी प्रवृत्तियोंका नियन्त्रण जरा भी न कर सका । जिस अपराधके कारण आज इस निराश जीवनका अंत इतना भयावह है, उसीकी ओर मेरे हृदयधन ! प्रवृत्ति आज भी जा रही है । अपने इस अधम शरीरसे न जाने कितने पावन हृदयोंको चोट पहुँचायी । आज भी दयामय ! उसी नारकीय पथका अवलम्बन कर आगे बढ़ रहा हूँ । जो कुछ भी था पास, सब कुछ साधनाकी अनन्त रचनामें लगा दिया । अवशेष है केवल पापमय अधम अस्थि–पञ्जर । उसे कबतक भूले रहोगे प्रेमार्णव ?

किन्तु अन्तर्यामिन् ! तुमसे नहीं छिपे हैं, भग्न हृदयके वे तिरस्कृत खण्ड मेरे प्यारे ! कहीं भी कलंक कालिमा नहीं लगी है । संसार मुझे क्यों ऐसा समझता है ? प्यारे ! इसका कारण नहीं जानता । हाँ, तुम्हारे रूठनेका कारण जानता हूँ । तुम्हारी अनन्त विभूतिका बराबर ही अपमान करता रहा हूँ । तुमने मुझे बहुत क्षमा किया । अब अक्षम्य है । इसीलिये नाथ ! तुमने मेरे लिये इस दण्डका विधान किया है । अधमउधारण ! क्या कहूँ ? जिसे

असंख्य बार कह चुका हूँ, उसे फिर भी कहूँगा। करुणामय! नीचके द्वारा किये गये अनादरका मूल्य ही क्या है?

कह दे रहा हूँ अन्तमें फिर भी नाथ! पुनीत अभिलाषाओंकी समाधिपर ही उन दो-चार कुसुमोंको खिलने दो। अन्तर्यामिन्! सदा ही तुमने इस अधमपर दया की है। विश्वास है अनन्त! इतना अपमानित होनेपर भी तुम्हारा भाव वही रहेगा।

तुम्हारा ही



दिनांक ८.६.३४

दुखियाके धन !

पापमय भावोंकी कलुषित अंजलि लेकर आज पुन: तुम्हारी आराधनामें प्रवृत्त हुआ हूँ । जानता नहीं मेरे प्रियतम ! यह तुम्हारी पूजा है या अपमान, तुम प्रसन्न होगे या रुष्ट, किन्तु इतना अवश्य ज्ञान है नाथ ! जिसने निरन्तर अपमानित होते हुए भी मुझे शरणमें रखा, उसकी पुनीत प्रेममयी दृष्टि अधमके इन क्षुद्र भावनाओंकी भेंटका अनादर न करेगी । सुना है प्रियतम ! सुदामाने तंडुल–कणोंको लेकर तुम्हारी अभ्यर्थना की थी और तुमने उसे चाहकर स्वीकार कर लिया था, किन्तु मेरी तुलना सुदामासे नहीं हो सकती प्रेमपुंज ! कहाँ वह भक्ति तथा प्रेमसे पूर्ण भेंट और कहाँ यह प्रवंचनामय स्वार्थपरताकी प्रतिमूर्ति । फिर भी नाथ ! आया हूँ भेंट लेकर । चढ़ा दे रहा हूँ इसे तुम्हारे चरणोंपर । रहने देना इसे वहीं दयामय !

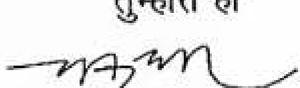
अन्तर्यामिन् ! अवश्य ही हमारी दीनता तुमसे छिपी नहीं । तृष्णाकी अनन्त धारमें बहता हुआ आज भी उसी तरह अस्थिर हूँ । तुममें लीन हो जानेकी उत्कट अभिलाषा रखते हुए भी मेरे प्राणाधिक ! तुमसे दूर हूँ । विनाशकी छाया पड़ चुकी है । बचाओ करुणामय !

प्राणाधार ! तुम्हारा काम कर सका। मुझ असहाय अज्ञानीकी लाज तुमने रख ली। अन्तर्यामिन् ! अपने सहित इसे भी तुम्हारे चरणोंमें अर्पण कर दे रहा हूँ। देखते रहना प्रियतम ! जिससे मैं पथभ्रष्ट न होऊँ। तुम्हारे सिवा मेरी गति नहीं करुणामय !

अन्तमें प्राणेश ! एक भिक्षा दे दो। मुझ अधमपर इतनी दया कर दो। कणसे भी संबंध तुम्हारा ही होकर कर सकूँ, यह वर दे दो मेरे प्यारे ! एक ही चितवनमें मेरा बेड़ा पार है अनन्त !

भावोंकी प्रचण्ड आँधीमें क्या लिखूँ प्रेमार्णव ! चुन लेना उन पावन कुसुमोंको। मैं तो तेरा हूँ, फिर क्या बचा ही है लीलामय ! अधम-उधारण ! सब तरह अधम होनेपर भी मुझे शरण देनी होगी। नाथ ! तुम अनन्त हो, तुमपर अविश्वास ही अनर्थका मूल है। जिसको तुमपर अमिट विश्वास है, उसे संसारके किसी भी झोंकेसे डर नहीं हैं। भूलना न प्यारे !

तुम्हारा ही



दिनांक १०.६.३४

प्रियतम !

क्षितिजके उस पार नीरव रजनीके प्रेममय अंचलकी आड़में कभी–कभी तुम्हें देखता हूँ । तुम हँसते रहते हो । विश्वकी वेदनाएँ पानी बनकर तेरे प्रेममय चररणोंको स्पर्श करती हैं और तुम उनका अभिनन्दन करते हो । ऊषा अपने सौन्दर्यका अर्घ लेकर तुम्हें श्रद्धांजलि चढ़ाती है, तुम उसे स्वीकार कर लेते हो । संध्याके हँसते हुए यौवनकी कमनीय छायामें असंख्य महान आत्माएँ अपने पुण्य कर्मोंकी आरती सजाकर तुम्हारी अभ्यर्थना करती हैं और तुम प्रफुल्ल होकर उनकी सेवा ग्रहण करते हो । तो क्यां प्राणाधिक ! मेरे इन क्षुद्र भावोंका दान लेकर एक बारके लिये भी न हँसोगे ? साधना हमारे ऐसे चंचल नारकीय पुरुषोंके लिये नहीं बनी है प्राणप्यारे ! न्यायकी कसौटीमें कभी खरा नहीं उतर सकूँगा ।

तुम्हारा ही



दिनांक ११.६.३४

मेरे प्राणेश !

यौवन–तरंगकी चंचलतामें आत्माके पवित्र संदेशका आदर नहीं होता । उस समय आत्माके करुण क्रन्दनका कोई मूल्य ही नहीं है । किन्तु एक दिन ग्रीष्म पहुँचता है । उस दिन वह ऐंठ नहीं होती । तापकी भीषण ज्वालामें सब चंचलता अन्तर्हित हो जाती है । हृदय फट जाता है और बह जाती है कलुषता । फिर अमल धार सारी विषमताओंको दबाकर शान्तिके अनन्त पथकी ओर अग्रसर होती है । क्षुद्र जीवनकी समानता यहाँ ही निहित है । दुखियाके धन ! मेरी भी अवस्था ऐसी ही है । यदि समुद्रमें मिलनेके पूर्व वे स्रोत मिल सकते !

तुम्हारा ही

दिनांक १३.६.३४

अनन्त !

पथ-भ्रष्ट पथिकको और कितना सताओगे ? संध्याके पवित्र अंचलमें ही पथिकका सर्वनाश बँधा है। रजनीका कोमल हृदय भी पथिकके दुःखमें टूक-टूक हो रहा है। दुखियाने मलिन वसन धारण किया है। अभागेका अन्त बड़ा ही कारुणिक होता है। संसारके पाषाण हृदय भी ऐसे करुण अंतपर दो बूँद अश्रु-दान कर श्रद्धाञ्जलि देते हैं। यही कारण है, प्यारे ! रजनी रो रही हैं। प्रेममय ! इस नैराश्य परिपूर्ण जीवन-स्रोतमें क्या पवित्र तरंग-मालाएँ किलोल न करेंगी ? प्रियतम ! दया करो। कंटकमय पथका अवलम्बन करके ही इसे आनन्दमें मिलने दो। कर्णधार ! दयाकी भिक्षा देकर कृतार्थ करो।

तुम्हारा ही



दिनांक २३.६.३४

प्रेमार्णव !

प्रेमके अनन्त सौन्दर्यका अनुभव तुम्हारी कमनीय अनुभूतिसे ही हो सकता है । विश्वकी असमानतामें यहाँका प्रत्येक कण लोप हो जायगा, अत: नेह – तन्तुका अचल बन्धन प्यारे ! यहाँ कहाँ ? फिर भी इन्हीं क्षणभंगुर कणोंकी पावन कसौटीपर कसा जाकर ही मनुष्य अनन्त पथकी यात्रा कर सकता है । दृढ़ताका प्रमाण मिलनेपर ही तुम अपनाते हो । क्या कसौटी स्वरूप ही वह भिक्षा न दोगे अन्तर्यामिन् !

तुम्हारा ही

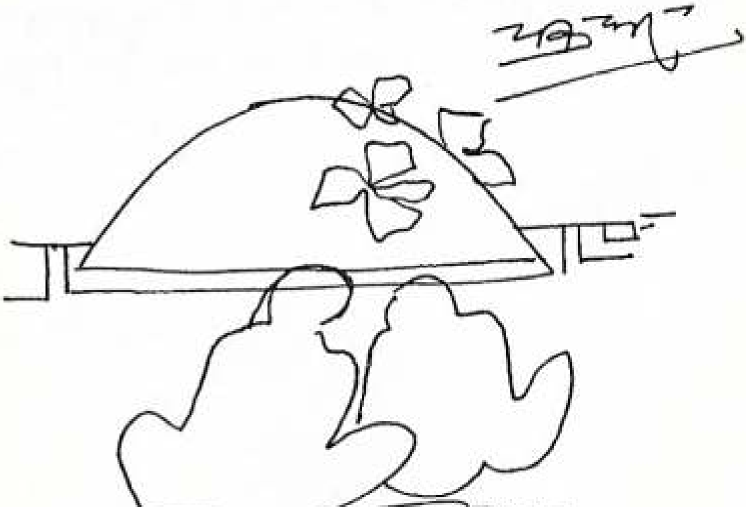


दिनांक २९.६.३४

प्रियतम !

कल्लोलिनीके मधुमय झंकारमें ही श्रान्त पथिकको शान्ति मिलती है । ज्योत्सनाके वे पवित्र सूत्र, चंचल तरंगोंकी वह आतुरता, यही अभागे जीवनको संतोष देते हैं । ममत्वसे परे होकर यहाँ ही पथिक चिर विश्राम पाता है । पुनः यहाँ ही अभिलाषाकी समाधिपर सुन्दर कुसुम हँसते हैं । यही है तुम्हारा पावन विधान । किन्तु मेरे लिये क्या करोगे अन्तर्यामिन् ?

तुम्हारा ही



दिनांक ७.७.३४

प्राणाधिक !

अगणित सुनहले दिन बीत गये । हँसती हुई ज्योत्सना पूर्ण अनेकों रजनीने अपना पावन सहयोग देकर वर्ष पूरा कर दिया । समयके अगम्य चक्रमें परिस्थितियोंने नया वस्त्र धारण किया । मैंने कहा 'मुसकुरा दो' और तुमने अमृतमय चितवनसे निहार दिया । मैंने कहा 'लाज रख लो' और तुमने अपना पवित्र कण देकर कृतार्थ कर दिया । प्राणेश ! सदा हाथ पसारा और तुमनें मेरी क्षुद्र मुट्ठी भर दी।

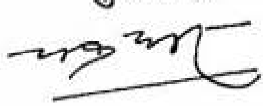
तुम्हारा ही

दिनांक २१.७.३४

मेरे आराध्यदेव !

वासनाकी प्रबल आँधीसे उद्वेलित होकर भविष्यकी सुन्दर कल्पनामें निमग्न हो जाता हूँ। कुछ क्षणोंके लिये अन्तर्वेदनाकी धधकती आग शिथिल पड़ जाती है। स्वप्न जगतकी उस मोहकताका अनुभव कर अचेत हो जाता हूँ। अचेतनाकी प्रगाढ़ तन्द्रामें एक सोनेका प्रासाद निर्माण करता हूँ। शांतिकी अनन्त धार प्रासादका चरण चूमती है। एक डुबकी लेकर प्रवेश-द्वारपपर पहुँचता हूँ। सफलताकी उष्णतामें मुस्काता हूँ। बस, आगे और कुछ नहीं। ...... अंधकारकी उसी भीषणतामें भविष्यका वास्तविक चित्र देखकर सिहर उठता हूँ। यदि उन क्षणोंका मूल्य तुम्हींसे माँग सकता अन्तर्यामिन् ?

तुम्हारा ही



दिनांक २७.७.३४

जीवननौकाके कर्णधार !

शैशवके किसी पुनीत प्रभातमें ही आशाका जन्म होता है। जननीके प्रेममय अंचलमें ही बेलिकी सुश्रुषा होती है। अगणित दिन तथा रात्रिके क्षीण आलोकमें परिवर्धित होकर यौवन–वसंतके मधुमय दिनोंमें ही आशा मनोहारी कुसुमोंसे अपना प्रत्यंग विभूषित करती है। अनेक ग्रीष्म तथा पतझड़ बीत जाते हैं, किन्तु बेलिकी सुन्दरता तथा मोहकता नष्ट नहीं होती है। एक मात्र मृत्युके भीषण पतझड़में ही इसका अवसान है। फिर मेरे प्रियतम ! इससे मुक्ति कहाँ ?

उस दिन अबोध था। आज ज्ञात रहनेपर भी अचेत हूँ। मेरी इस असमर्थतापर दया करो करुणामय !

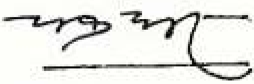
तुम्हारा ही

दिनांक ३.८.३४

प्रियतम !

ग्राम्य जीवनका परित्यागकर पुनः उस नगरीमें आया हूँ। मनुष्यताके अभावने, सुना है, मेरे प्राणेश ! इस नगरीको श्रीहीन कर दिया हैं। सिराजुद्दौलाकी अनन्त स्मृति अपनी करुण सिसकियाँ भर रही है। देखा, अन्तर्यामिन् ! कल्लोलिनीका किलोल वही था। तरंगें उस तरह ही हँस रही थीं। विशाल भवनोंका अतुल वैभव भी असंख्य दरिद्र नागरिकोंके अस्थि-पिञ्जरमें जीवन संचार कर देनेका प्रलोभन दे रहा था। था नहीं केवल मैं। ....... वेदनाका अनन्त भार लेकर आया हूँ। तुममें अर्पण कर रहा हूँ प्राणेश ! प्राणाधिक ! तुम्हारा हूँ। और क्या ?

तुम्हारा ही

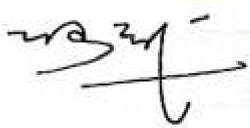


दिनांक ९.८.३४

प्राणेश !

समयके भीषण घर्षणमें एक मात्र प्रकृतिका अनुपम सौन्दर्य ही विनष्ट नहीं होता, विश्वके महान उद्देश्यका उद्गम भी यही है, किन्तु इस ज्वलन्त सत्यकी उपासना हमारे ऐसे अधम नहीं कर सकते करुणामय ! ....... अभिलाषाओंकी अभ्यर्थना कर संभवत: जीवनधन ! तुममें नहीं मिल सकता । अन्तर्यामिन् ! आगे क्या होगा ? प्रकृति–प्रेम यदि मैं भी सीख सकता प्रेममय !

तुम्हारा ही



दिनांक १४.८.३४

प्राणाधार !

आज वह प्रमाद नष्ट हो गया है। प्रभात हँस रहा था। उसी सुन्दर आलोकमें मैंने कल्पनाकी —— 'संसार कामनामय है'। तेरी हृद्–तंत्रीके तार बज उठे। स्वर्गीय सुखमें तन्मय हो पड़ा। उस दिनसे मेरे आराध्यदेव ! असंख्य कामनाओंकी डाली तुम्हारे प्रेममय चरणोंमें अर्पण की। स्पष्ट देखा, प्रेममय भावोंसे प्रेरित होकर कुछको तुमने चूमा था। आज मैं भावहीन हूँ। क्या तुममें भी परिवर्तन होगा करुणामय ?

अन्तर्यामिन् ! वेदनाओंको समाधि दी। इनका पुनर्जन्म हुआ। क्या प्रेममय चितवनकी भीख न दोगे दयामय ? अबोधके द्वारा किये गये अपमानोंसे इतना रुष्ट क्यों प्रियतम !

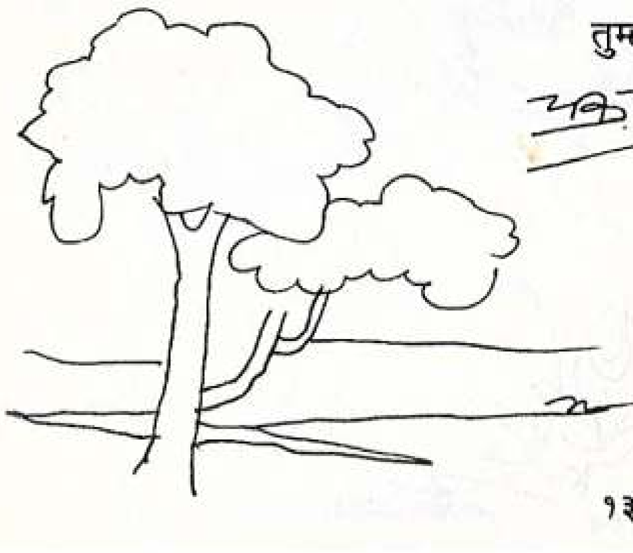
तुम्हारा ही

दिनांक २०.८.३४

मेरे सर्वस्व !

वे तार टूट गये हैं, जिन्होंने एक दिन मधुर रागिणीका झंकार किया था। निरन्तर बजते रहकर वे क्षीण हो गये थे। ऊषाका पावन समीर उन्हें हँसता न देख सका। संध्याकी पुनीत छायामें वे फिर नाच न सके। प्रकृतिके नीरव इतिहासकी तरह उनका भी इतिहास अनन्त अतीतके गर्भमें सो रहा है। यह चिर निद्रा है। संभवतः मेरे प्रियतम ! यह भंग न होगी। यदि मैं इस निराश महानिशामें तुम्हारे प्रेममय चितवनका प्रकाश पा सकता तो मेरे जीवनधन ! वे स्मृतियाँ दुःखमय अवश्य न होतीं।

तुम्हारा ही



दिनांक २५.८.३४

जीवनधन !

विश्व–धारा आज भी अविराम गतिसे प्रवाहित हो रही है। मग्न हृदयकी असंख्य करुण गाथाएँ इसीमें मिल पड़ी हैं। इसका ज्ञान किसीको नहीं है प्राणेश ! असारतासे अनभिज्ञ मूढ़ मानव बाह्य सौन्दर्यमें अचेत हो पड़ता है। कभी तन्द्रा टूटनेपर सत्यका दर्शन करता है। एक बार मैं भी जाग पड़ा था। यह तुम्हारी अपरिमित करुणा थी। पश्चात् शुभ्र चाँदनीमें चन्द्रदेव आये। अचेत हो पड़ा। यदि निरन्तर ही जाग सकता मेरे प्राणप्यारे !



तुम्हारा ही



दिनांक ३०.८.३४

प्रेमार्णव !

तुम्हारी मधुर चितवनकी आभासे विश्वका निर्माण होता है। पवित्र मुस्कानके आधारपर ही अनन्त विश्व-धारा प्रवाहित होती है। अट्टहासके एक क्षीण स्वरसे ही इसका अवसान भी हो जाता है। फिर मेरे प्राणेश ! इतने महानकी कल्पना हमारे ऐसे क्षुद्र किस प्रकार कर सकते हैं ? क्षुद्र अभिलाषाओंकी मोहकतामें तो सारा जीवन विभोर रहा। अब अन्त समय प्रियतम ! हमारी याचनापर ध्यान ही क्यों दोगे ?



तुम्हारा ही

दिनांक ५.९.३४

प्रियतम !

इतने भयावह करुण भविष्यके लिये पथिकका रोना संभवत: व्यर्थ है मेरे प्राणेश ! समयके फेरने उसके जीवनको वेदनामय बना दिया। मेघ अभी बिखर भी न पाये थे कि प्रलयका भीषण नाद प्रारंभ हो गया। जीवन प्रदीप बुझनेके पूर्व पथिकका वह भग्न हृदय भी इस बार पूर्ण रूपसे पिस जायगा।

अन्तर्यामिन् ! करुण पुकारका मूल्य एक तुम्हीं देते हो। विश्वने जिसे ठुकरा दिया, उसे तुम्हारे पवित्र चरणोंमें स्थान मिल जाता है। दु:खसे कातर प्राणहीन अभागे जीवोंके लिये तुम्हारी ही आशा सर्वस्व है। कितना भी अधम क्यों न हो, तुम्हारी घृणाका पात्र वह अवश्य ही नहीं है। अत: नाथ ! पथिक तुम्हारे ही सामने रोने आया है।

दुखियाके धन ! एक बार देखो इस अस्थि-पंजरकी ओर, पथिकके इस पापमय जीवनकी ओर, उसकी असमर्थताकी ओर, उसकी असहाय अवस्थाकी ओर, उसके दु:खमय भविष्यकी ओर। फिर क्या दया न कर सकोगे दयामय ! मेरे प्राणेश ! यह नितान्त सत्य है कि पथिक अपने कर्मका ही फल भोग रहा है फिर भी

करुणामय ! उसपर दया करो । जीवनकी सारी आशाओंसे निराश इस अभागे जीवनपर तरस खाओ करुणानिधि ! डूबतेको बचा लो कर्णधार ! उसकी लाज उसका सर्वस्व तुम्हारे हाथोंमें है । एक मधुर चितवनसे देखकर उसे बचा लो । अन्तर्यामिन् ! जिसके लिये तुमने इतना किया, उसके लिये इतना कर दो प्राणप्यारे ! वह अभागा है । सारी लांछना, सारा तिरस्कार, सारा अपमान आजतक पथिकने केवल तुम्हारी दयाका सहारा लेकर सह लिया है । इस बार उसे बचाना ही होगा मेरे आराध्यदेव !

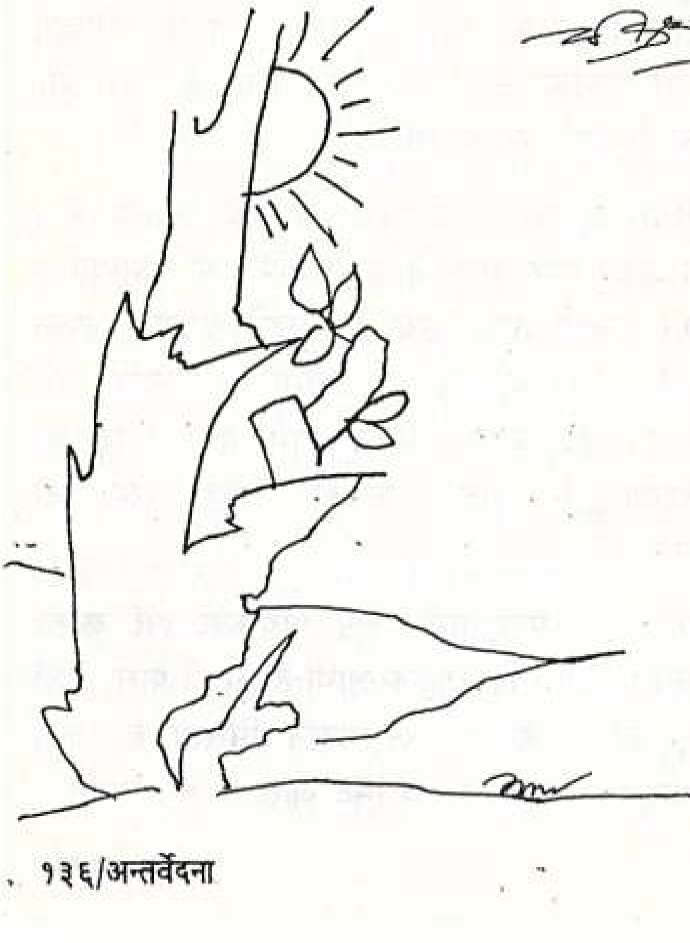
जीवन सर्वस्व ! पथिकके अपराध अक्षम्य हैं । कितना भी कठोर दण्ड अपूर्ण ही होगा । फिर भी प्राणप्यारे ! कातर होकर तुम्हारी शरण आया है, तुम्हारे चरणोंमें अपना सिर रखा है । विश्वमें कोई भी अपमानित होनेपर, ठगे जानेपर दया नहीं करता, किन्तु तुम दया करते हो अधम–उधारण ! अत: उसकी लाज रख लो शरणागतपाल !

अनन्त ! पता नहीं, तुम पथिकके इस कातर विनयपर क्या करोगे । किन्तु वह आया है तुम्हारे पास, जहाँ दुखियोंको, कातर जीवोंको अभयदान मिलता है, जहाँ पहुँच जानेपर सारे विश्वका भय मिट जाता है । प्राणनाथ !

जगदाधार ! दयामय ! अशरणशरण, अधमउधारण ! दया करो प्राणेश ! तुम्हारे बिना पथिकका निस्तार नहीं है । बचाओ, बचाओ प्राणप्यारे !

तुम्हारा ही





दिनांक १०.९.३४

मेरे जीवनसर्वस्व !

कहाँ हो ? आओ प्राणाधार ! पथिक आया है एक बार पुन: तुममें अपनेको अन्तर्हित कर देने । उसकी कुछ भी अभिलाषा नहीं है, कोई भी सांसारिक चाह नहीं है, सभी कामनाओंसे वह मुक्त हो चुका है । वह केवल तुममें तन्मय होने आया है । हो जाने दो प्राणेश !

हाय ! मेरे अनन्तधन ! पथिक कितना नीच है और तुम कितने महान हो ? वह कितना अधम है और तुम कितने उच्च्य हो ? ऐसे कृतघ्नके प्रति तुम्हारी इतनी दयालुता ? जिसने सदा तुम्हारी अवज्ञा की, उसके प्रति इतना प्यार ? उस अधम दुरात्माकी भी एक करुण पुकारने तुम्हें द्रवित कर दिया मेरे प्रियतम ! कहाँ पाऊँगा तुम्हें ?

विनाशकी छाया पड़ चुकी थी । पतनका अवशेष अंश भी पूरा होने जा रहा था, पर तुमने हँस दिया । फिर सब कुछ ही आनन्दमय हो गया । अपना सब कुछ तुम्हारे चरणोंपर चढ़ा रहा है । उसे ले लो प्यारे ! जीवनकी सारी कमाईका मूल्य उसके स्वीकार–स्वरूपमें दे दो ।

इतने बड़े महानको धन्यवाद कैसे दें प्यारे ! वह

अधम है। उसे ज्ञात नहीं। बता दो प्यारे ! करुणामय ! अन्तर्यामिन् ! वह मूर्ख है। उसे बताना होगा। आओ प्राणेश !

तुम्हारा ही



दिनांक १६.९.३४

दुखियाके धन !

ऊषाके प्रथम मुस्कानसे लेकर संध्याकी प्रथम नीरव छायातक मनुष्यके हृदयमें असंख्य भावोंका उद्रेक होता है। इनमेंसे कुछ जीवनमें महान परिवर्तन ला देते हैं। भविष्य-मृग-मरीचिकाकी तन्द्रामें विभोर मनुष्य भी जाग पड़ता है। मेरे प्राणेश ! पश्चात्तापकी विषम ज्वालामें अस्थि-पंजर भस्मसात हो जाता है, किन्तु जीवनसर्वस्व ! वास्तविक प्रतिकार क्या है, उस समय भी संभवत: कोई अनुभव नहीं करता। हाँ, यदि एक क्षणके लिये तुम्हारी कमनीयताके रहस्यको समझ सके तो संभव है प्यारे ! वह तुम्हें पा सके। पर मुझ अधमके लिये यह कहाँ ?

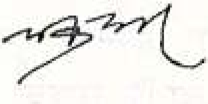
मेरे प्रियतम ! प्रकृतिकी ओर निहारता हूँ और फिर 'सुख' की विवेचना करता हूँ। हँसते हुए चंद्रदेवको देखता हूँ, इठलाती हुई चाँदनीका स्पर्श करता हूँ। पाता हूँ, नाथ ! सुखकी चरम सीमा नहीं है। विश्वकी असीम धनराशिको एकत्रित करता हूँ। उसे अपने पैरोंपर रख देता हूँ। वहाँ देखता हूँ, सुखकी कल्पना मात्र भी असंभव है। अंतमें एक बार अपनेको तुममें तन्मय करने आया और मेरे सर्वस्व ! देखा कि सुखकी अनन्त धारा मेरे इस क्षीण अस्थि-पंजरको

स्पर्श करती हुई अविलम्ब गतिसे प्रवाहित हो रही है। यदि उस धारामें सदाके लिये बह जाता ?

मेरे कर्णधार ! साधनाकी क्षीण नौकाका निर्माण किया। महासागरकी प्रचंड धारामें उसे छोड़ दिया। देखने लगा कि यदि हमें यह तुम्हारे पास पहुँचा दे .......। काली घटा घिर आयी। मेघका तांडव असह्य था। क्षणभर पश्चात् मैं प्रसन्न था, क्यों कि मेघ मेरी क्षति न कर सके। इसके कुछ ही क्षण बाद एक क्षीण आँधी आयी। मैं डूब गया सर्वज्ञ ! अगणित बार यही हुआ है अन्तर्यामिन् !

अब वह अभिलाषा नहीं, वह उत्कंठा नहीं ! मैं तुम्हारा हूँ। यदि तुम्हारी इच्छा नहीं तो डूबने दो जीवन सर्वस्व ! मैं इसीमें प्रसन्न हूँ। मेरी सार्थकता इसीमें है प्राणाधार ! तुमने मुझे अपनाया है। अपनी अनन्त हँसीके आलोकसे मेरे अभागे अंधकारपूर्ण जीवनको आलोकित किया है। इससे परे कुछ नहीं। मुझे इसके सिवा और कुछ न चाहिये।

तुम्हारा ही



दिनांक २१.९.३४

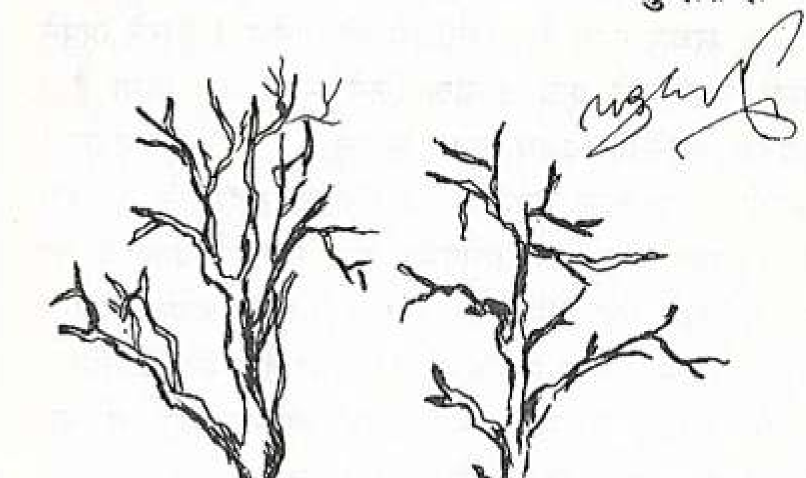
प्राणेश !

मेघका पाषाण हृदय भी प्रकृतिके अटल नियमका निरादर नहीं कर सका, अतः पानी बनकर निरन्तर बह रहा था। अब उसकी कठोरता नष्ट हो गयी है। उसमें भी दयाका संचार हुआ है। इसीलिये मेरे प्राणेश ! उसने अपने बन्दी चंद्रदेवको कुछ क्षणोंके लिये मुक्त कर दिया है। चंद्रदेव अपनेको स्वतंत्र पाकर प्रसन्न हैं। मेरे आराध्यदेव ! अपनी स्वतंत्रताका उपयोग चंद्र कितनी सुंदरतासे कर रहा है। अमल चाँदनीका अनुपमेय दान सारे विश्वको दे रहा है। यह दान सबके लिये हैं। राहका भिखारी अथवा अनन्त धनका स्वामी, सभी उसके लिये बराबर हैं। मेरे प्रियतम ! अधम अथवा महान, सभी उसके दानका आनन्द लूट सकते हैं। वास्तविक ही चंद्र बहुत उदार है मेरे सर्वस्व ! यदि इस उदारताको किंचित् भी अपना सकता तो तुम कितना हमें प्यार करते, यह सोचकर रोने लगता हूँ अन्तर्यामिन् !

किन्तु तुम मुझे उतना ही प्यार करते हो। इतना कलुषित होनेपर मेरे प्रति तुम्हारा प्यार असीम है। जीवनमें स्वार्थ साधनके लिये ही तुम्हारी अभ्यर्थना की। मैं तुम्हें

प्यार करता हूँ, यह कहकर अपनेको भी सदा भुलाता आया हूँ, फिर भी प्रत्येक क्षण तुम्हारा प्यार पाता हूँ। तुम कितने महान हो प्राणाधार !

तुम्हारा ही



दिनांक २६.९.३४

प्रियतम !

जीवन–धाराका अवसान कहाँ है ? सारा ज्ञान, सारी विवेचना शक्ति लगाकर भी इन ग्रंथियोंको खोल न सका। पता नहीं कि यह पथ, जिसका आश्रय हमने लिया है, वह मेरी इस क्षीण नौकाको निर्दिष्टतक खे ले जायगा या मझधारमें ही डुबो देगा। किन्तु अब यह प्रलाप निष्फल है प्राणप्यारे ! सदा ऐसा ही करता आया हूँ, इसलिये हास्यास्पद है। जीवनधन ! इन उलझनोंका निर्माण मैंने स्वयं किया है और फिर मेरे प्राणनाथ ! आता हूँ सुनाने अपनी करुण राम कहानी। तुम्हारे सिवा मेरा कोई नहीं। व्याकुल होनेपर तुम ही मुझे शांति देते हो, इसीसे तुम्हींसे कहता हूँ। और किसीसे नहीं कहा। कहनेकी इच्छा भी नहीं है। अच्छा हो मेरे सर्वस्व ! यह चिर कालतक विश्वके किसी अँधेरे कोनेमें पड़ा रहे। संभव है मेरे प्रियतम ! संसार इसे सुनकर मुझे फिर भी किसी सुन्दर प्रलोभनमें बाँधना चाहे। मैं अधम फँस जाऊँगा मेरे दयामय ! अनन्त ! मेरी अनन्त यात्रातक किसीको मेरे विषयमें किंचित् भी ज्ञान न हो, यही अच्छा है। अन्तर्यामिन् ! सूर्यके उदयसे लेकर संध्यातक, संध्याकी कमनीय म्लान छायासे प्रभातके हँसते

हुए यौवन–विकास तक, तुम मेरे साक्षी हो। अन्तर्हृदयके प्रत्येक कणसे तुम अवगत हो। तुमसे कुछ भी गुप्त नहीं है मायामय ! अत: नाथ ! तुम ही मेरा निपटारा कर दो।

तुम्हारा ही



दिनांक १.१०.३४

प्राणेश !

यह है एक ही रागिणीके दो झंकार, जीवन–यवनिकाकी ओटमें एक ही नाटकके दो दृश्य। एक है अन्तर्वेदनासे सनी हुई अंतर हृदयकी करुण पुकार। यह है असहायकी व्याकुलता। यहाँ सारा अहंकार, सारी अहमन्यता पानी बनकर बह जाती है और उसी निर्झरके अंकमें नाचता है एक आकुल प्राण। यहाँ कृत्रिमताका आभासतक नहीं। यह एकान्त पवित्र तथा निर्मल है प्राणप्यारे। किन्तु दूसरा ? × × × × यह है स्वार्थकी प्रबल आँधीमें बहकर वांछित पा लेनेके उपलक्षमें मदपूर्ण एक तान, संभवत: शीलताके नाते स्वामीके प्रति धन्यवादके किंचित् नीरस शब्द। यहाँ करुणा नहीं है। यहाँ वह मार्मिकता नहीं, बल्कि पावन संकल्पकी ग्रंथि यहाँ भी शिथिल पड़ जाती है। यह है विस्मृतिके अंकमें चिर चिद्रा अन्तर्यामिन् ! गायक वही है, पर स्वर एक दूसरेसे कितने भिन्न हैं ? इसपर भी उसकी अगणित पुनरावृत्ति ? बचाओ अशरणशरण ! आओ प्रियतम !

तुम्हारा ही

दिनांक ९.१०.३४

प्रियतम !

वसंतका यौवन था, पर पथिकके दिन थे शैशवके। पथिक अपनी दीन कुटीरकी क्षीण खाटपर पड़ा था। आनन्दमयी नींद थी। उतनी प्रगाढ़ निद्राका आनन्द अब नहीं ले सकता मेरे प्राणेश ! ....... एकाएक मंद समीरकी किसी थपकीसे उसकी अचेतना नष्ट हो गयी। पथिकने देखा —— प्रकृतिकी गोदमें प्रभात मचल रहा था। पथिकने सुना —— पी–ई–ई– पी–ई–ई– निकटके उद्यानमें पपीहाका करुण क्रंदन। प्राणाधार ! इस क्षीण पुकारमें पपीहाके प्राण बाहर निकल रहे थे। वेदनाका उतना करुण चित्र पथिकने फिर न देखा। उस समय अन्तर्यामिन् ! पथिककी दशा कैसी थी, यह तुम्हीं अच्छी तरह जानते हो। प्रथम बार उसके हृदयमें विश्व तथा प्रकृति प्रेमकी भावना जाग्रत हुई थी। कुछ क्षणोंके लिये उसके प्राण भी तुम्हारे लिये उसी तरह व्याकुल हो रहे थे। यदि सर्वदा उसी तरह व्याकुल रह सकता मेरे सर्वस्व !

आज अबोध नहीं हूँ, प्राणप्यारे ! सब कुछ जानता हूँ मायामय ! किन्तु जानकर भी असहाय हूँ अन्तर्यामिन्। अशरणशरण ! जिस परिस्थितिके बहावमें पथिक बह रहा

है, उसे तुम्हारे सिवा और कोई भी नहीं बदल सकता। मत बदलो प्राणप्यारे ! किन्तु ........ अन्तर्यामिन् ! किंचित् भी दयाकर अपना लो प्राणप्यारे ! पथिक मूर्ख है, फिर भी नाथ ! सांसारिक साधनोंको महत्त्व उसने नहीं दिया। सर्वज्ञ ! पथिकके हृदयमें तुम हो। तुमपर विश्वास रखकर भी अन्यकी सहायता लेते देख तुम रुष्ट न होना प्राणप्यारे ! उसका प्रत्येक कार्य तुम्हारे चरणोंमें अर्पित है। वह तुम्हारा दीन सेवक है। उसपर दया करो प्राणप्यारे !

तुम्हारा ही

चक्रधर



दिनांक १५.१०.३४

प्राणेश !

आज न वह उद्यान है, न वह पथिक । कुसुमोंका असीम वैभव नष्ट हो गया है । मनोरम बेलियाँ समाधिस्थ हो चुकी हैं । हँसते हुए वृक्ष म्लान हो गये हैं । कुछ ईंटें अपने अतीत गौरवका इतिहास अपने क्षीण क्रोड़में छिपाकर पड़े हैं । भावुकोंका हृदय इसे देखकर एक बार उद्विग्न हो जाता है । पथिकके भी वे कोमल भाव क्षीण हो गये हैं । शैशवकी वह अज्ञात पवित्रता नष्ट हो गयी है । वह भयमिश्रित एकान्त निष्ठा, समयके फेरसे लोप हो गयी है । आज यह प्रेमका अनुसंधान नहीं, वरन् वासनाकी तृप्तिके साधनका आयोजन है । किन्तु आराध्य देव ! तुम आज भी वही हो । मेरे सर्वस्व ! संसार कितना क्षणिक और तुम कितने स्थिर हो ?

तुम्हारा ही

दिनांक २०.१०.३४

आराध्यदेव !

सांसारिक यातनाओंसे विचलित हो पड़ता हूँ। सारे दृढ़ संकल्प विफल हो जाते हैं। स्थिर किया था प्राणप्यारे ! शरीरकी ममताका त्याग करूँगा। आत्म–अनुभूतिमें विभोर होनेकी लालसा जाग पड़ी थी, पर मैं अधम कुछ भी नहीं कर सकता अधमउधारण ! दया करो मेरे सर्वस्व। आलोककी क्षीण रेखा दे दो दयामय !

तुम्हारा ही

दिनांक २६.१०.३४

प्राणाधार !

तुम्हारा पथ दूसरा है । जीवनके टूटे-फूटे अनुभवोंसे अबतक यही निष्कर्ष निकाल सका हूँ कि ममत्वका इस अधम शरीरसे अभेद्य संबंध है । जो तुम्हारी अनन्त हँसीका रहस्य जानते हैं, मेरे प्रियतम ! वे ही इसका विच्छेद कर सकते हैं । उन महान आत्माओंको विश्वकी भयावह परिस्थितियाँ चंचल नहीं बनातीं । असीम सुख-पुंज उनके शरीर-हृदयमें उल्लासका उद्रेक नहीं कर सकता । कर्तव्य-कर्ममें निरत रहकर भी वे आसक्तिसे हीन हैं । यदि मैं भी वास्तविक अनासक्त हो सकता ?

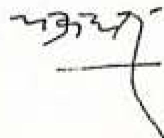
तुम्हारा ही

दिनांक १.११.३४

प्रेममय !

भुवनमोहिनी मायाके प्रभावसे यह विशाल विश्व संचालित हो रहा है। मानव हृदयकी सारी व्यथाओं तथा सारे उल्लासका प्रादुर्भाव इसीसे होता है। इसका स्वरूप कल्पनातीत है। सुना है प्रियतम ! इसीके आवरणमें अदृश्य रहकर तुम घट–घटमें व्याप्त हो। हमारे तुम्हारे बीच स्थित इस अजेय मायासे निस्तार कैसे होगा प्राणेश ! इतना समीप रहनेपर भी तुममें न मिल सकूँगा प्राणाधार !

तुम्हारा ही

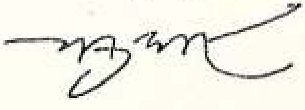


दिनांक ७.११.३४

जीवनसर्वस्व !·

विश्व संगीतके बीच स्थित स्वयं प्रकृति भी नीरव है। आजतक इससे अगणित राग प्रादुर्भूत हुए तथा अपनी यात्रा पूरीकर इसीमें लय हो गये । प्रियतम ! भविष्यका ज्ञान नहीं कि क्या होगा ? हाँ, इतना सुना है, इन्हीं किंचित् रागोंमें विभोर होकर मनुष्य तुम्हारा अन्वेषण कर सकता है, किन्तु अधमउधारण ! इतनी नीरव प्रकृतिके आधारस्वरूप तुम्हें मैं तो कल्पनामें भी न ला सका । राग सुना है प्राणप्यारे ! पर मर्म न समझ सका । संभव है, अनन्तधन ! अबतक तुम्हें ठगनेके बहाने अपनेको ही ठगता आया हूँ । अन्तर हृदयकी अभिलाषाका अनादर मेरे आराध्यदेव ! तुम कदापि नहीं करते । अन्तर्यामिन् ! संभवत: मेरी यह पुकार प्रवंचना मात्र है, तथापि क्या मुझे छोड़ दोगे शरणागतपाल ?

तुम्हारा ही

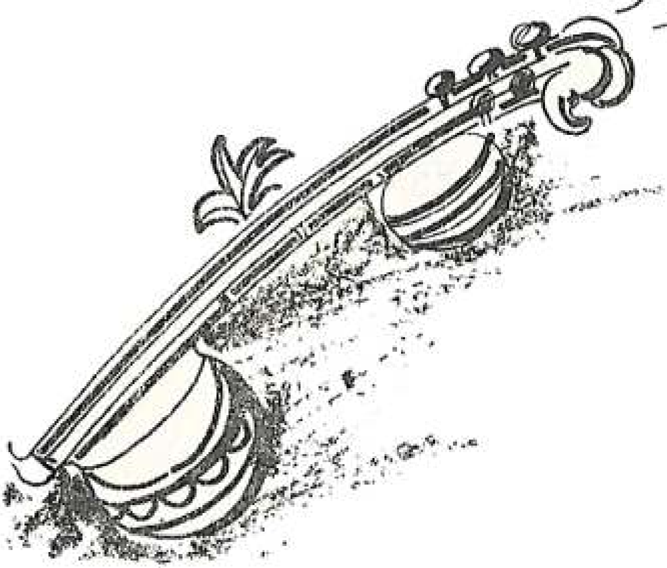


दिनांक १३.११.३४

मेरे प्राणेश !

उस अमर संगीतके एक झंकारका भी अभ्यास न कर सका । चंचल इन्द्रियोंके अगम प्रवाहमें सारे संकल्प निमग्न हो गये । तुम्हारे पथको अपना न सका । प्रतिदिन बड़ी-बड़ी आशाएँ लेकर अग्रसर होता था, किन्तु सभी संचय सार हीन हो गये अन्तर्यामिन् ! किस तरह पार जाऊँगा अधमउधारण !

तुम्हारा ही



दिनांक २०.११.३४

प्रेममय !

पथिकने प्रतिमाका निर्माण किया । उच्चतम सौन्दर्यका आदर्श रख उसका शृंगार किया और फिर उसने अपनेको उसपर न्योछावर कर दिया, किन्तु अन्तमें समझ पाया, यहाँ तथ्य कुछ नहीं ।

पुनः मेरे प्रियतम ! सुरसरिके निर्मल प्रवाहमें प्रवेश कर सुरसरि तथा अपने दोनोंके हृदयोंको एकत्र कर तुम्हारी अनन्त साधनामें प्रवृत्त हुआ । वहाँ भी पथिकको निराश ही होना पड़ा । इसी तरह प्राणाधार ! न जाने कितने तन्तुओंको जोड़कर उसने तुम्हारे चरणोंमें माला रखी, पर तुमने अस्वीकार कर दिया अन्तर्यामिन् ! पता नहीं, आज उसे ज्ञात नहीं । यह अचानक हुआ मायामय ! एक दिन पथिकने अपनी भूलका अनुभव किया । उस दिन समझ पाया, तुम्हारी विभूतिका सुलभ दर्शन कहाँ है । वहाँ कृत्रिम सौन्दर्य नहीं है प्यारे ! मलिन सौन्दर्यका आवरण था अवश्य, पर उसीमें ही सब कुछ निहित था । भावका यह आवेश सदा रह सकता है मेरे जीवन सर्वस्व !

तुम्हारा ही



दिनांक २९.११.३४

जीवनधन !

प्रबल आँधीमें जीवन–प्रदीपकी क्षीण शिखाएँ नाच रही हैं। आजसे वर्षों पहले गृहस्वामीने इसे जलाया था। उस समय रजनीका शैशव था। शिशु प्रदीपने भी असीम आनन्द लूट लिया। धीरे–धीरे रजनी एक दिन यौवन–भारसे दब–सी गयी। प्रदीपने स्वागतमें अपना सर्वस्व दान कर दिया। रजनीका अवसान अभी निश्चित नहीं, पर प्रदीप संभवतः बुझने जा रहा है। प्रियतम ! बुझ जाय, इसकी चिंता नहीं। केवल अभिलाषा है, प्राणेश ! प्रदीप अंत समयमें भी गृहस्वामीका प्यार पा सके।

तुम्हारा ही



दिनांक ३.१२.३४

दुखियाके धन !

वह था जननीके लिये एक मंगलमय प्रभात । मैं एकान्त अबोध अवस्थामें पड़ा रो रहा था । क्यों रो रहा था, यह आज भी अज्ञात है, पर सारा परिवार मेरे जीवनसर्वस्व! मेरे आगमनमें आनन्दसे नाच रहा था । पुन: अनेक मनोरम प्रभात बीत गये । अनेक सुनहली संध्याने दिनके अवसानपर अश्रुपात किये । मैं अबोध नहीं था । उसी समय किसी पुनीत क्षणमें समझ पाया कि मैं अकेला हूँ ।

उसके उपरान्त अन्तर्यामिन् ! क्षीण, नौकाको छोड़ दिया अनन्त प्रवाहमें । आजतक बह रहा हूँ । संभवत: तटका दर्शन इस जन्ममें न होगा प्राणप्यारे ! × × × ×

कर्णधार ! अनन्त धारमें इसे अन्तर्हित कर दोगे या खे ले जाओगे, इसका निर्णय तुम कर लेना, पर किसी भी परिस्थितिमें मुझे भूल न जाओ, यही भीख हमें दे दो दयामय !

तुम्हारा ही

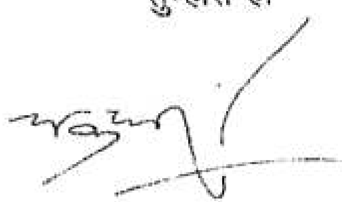
दिनांक ९.१२.३४

अनन्तधन !

चाँदनीकी अमल धारामें किलोल करती हुई रजनी एकान्त भावसे हँस रही थी। सारा विश्व गंभीर निद्रामें अचेत था। मध्य रात्रिकी नीरवता सराहनीय थी। उस समय भी मेरे प्रियतम ! पथिक जाग रहा था। कल्पना स्रोतमें बहते हुए अचानक भीषण भँवरमें पड़ गया। इतनी उष्णता, इतनी असहाय अवस्थाका अनुभव उसने कभी न किया था। अन्तमें डूबत-डूबते बचा अन्तर्यामिन् !

अनके तरंगोंमें डूबता-उतराता आज भी बह रहा है। यात्रियोंसे सुना है अभी-अभी कि और भी बड़े-बड़े भँवर अवशेष हैं। कैसे पार लगूँगा प्राणेश !

तुम्हारा ही



दिनांक १६.१२.३४

प्रियतम !

जीवन झरनेके उद्गमके पास खड़े होकर एक बार आलोचना करना चाहा इसकी विलक्षण धाराकी । नाथ ! पाया कि प्रकृतिने अपने किंचित् पावन बूँदोंको संचित कर इसका निर्माण किया था । वे ही बूँदें झर-झरकर धारा-रूपमें आजतक बह रहे हैं । वर्ष-पर-वर्ष बीत गये, झरना आज भी उसी तरह झर रहा है, पर रूप कितना परिवर्तित है प्राणप्यारे ! निर्मल, शांत कल्लोल – वह कल्लोल, जिसे देखकर तुम भी हँस पड़ते थे, अब नहीं है मेरे हृदयधन ! पहले इतना उज्जवल, पश्चात् इतना मलिन ? तुम अगम्य हो । और क्या कहूँ जीवनसर्वस्व !

तुम्हारा ही

दिनांक २२.१२.३४

प्राणाधिक !

कण–कणमें व्याप्त रहकर सारे विश्वके साक्षी हो। पुण्य कर्मोंकी सुन्दर डाली बहुतेरे तेरे चरणोंमें ला रखते हैं। उसका आदर करते हो प्राणप्यारे ! एक लाता अपूर्व वैभव और अतुल धनकी भेंट, वह भी तेरे मधुर चितवनकी एक आभामें विभोर होकर अपनी जीवन–नैयाको खे लेता है। आजतक मेरे अनन्तधन ! तुमने अपने प्रेमका अप्रमेय दान सबको दिया है। प्रियतम ! क्या मैं भी आशा करूँ कि तुम इस अधमकी इस क्षुद्र भेंटको स्वीकार करोगे ?

लीलामय ! लाकर रखा है मुझे तुमने यहाँ। तनिक सोचो प्यारे ! कितना कठिन पथ है और कितना असहाय मुझे बनाया है। जिस भँवरमें पड़कर अगणित वीरोंने अपना सर्वस्व खोया है, वहाँ हमें भेजकर क्या होगा मायामय ! जीवनसर्वस्व ! इतना ज्ञान नहीं कि तुम्हारे विधानका अर्थ लगाऊँ, किन्तु तुम भी छिपाकर इसे हमसे रख सकोगे प्यारे ?

अराध्यदेव ! मैं पूछता हूँ कि मेरे अधिकारको क्यों भूलते हो ? क्या एक ही पथ है हृदयधन ! कदापि नहीं।

तुमने ही कहा है मेरे प्यारे ××××××××
जिसे एक बार प्यार दिया है, उसे इस तरह रुलाकर क्या पाओगे करुणानिधे ?

तुम्हारा ही



दिनांक २८.१२.३४

मेरे आराध्यदेव !

प्रकृतिके वक्षस्थलपर ग्रामके यह खेत लोट रहे हैं। एक मास पहले नाथ ! देखा था इन्हींके हृदय-रक्तसे सिंचित होकर धानके वे पौधे यौवनके उमंगमें हँस रहे थे। आज पककर गिर गये हैं। किसान ललचौहीं आँखोंसे इस दानको बटोर रहा है। खेत अनादि कालसे ही यह अप्रमेय दान कर रहा है, किन्तु प्राणेश ! इस दानके बदलेमें इसे क्या मिलता है ? इसने तो मेरे जीवनसर्वस्व ! कामनाएँ न कीं। यह कितना निरपेक्ष है प्रियतम ?

तुम्हारा ही

चक्रधर

दिनांक ४.१.३५

प्रेममय !

रेल अविराम गतिसे दौड़ रही थी । पथिकका मन भी उसी गतिसे भागता जा रहा था । अचानक धारा मंद हो गयी । पथिकने बाहर देखा । सूर्य विश्राम करने जा रहे थे । नीले आकाशके नीचे कृषकोंकी गायें चर रही थीं । हेमन्तका प्रेम पाकर बगुले पागल हो रहे थे । उन्हें भविष्यकी चिंता न थी । मेरे जीवनसर्वस्व ! उन कामना–रहित स्वच्छन्द विरचने वाले बगुलेका अनुकरण यदि तनिक भी पथिक कर सकता तो तुम उसे कितना प्यार करते ?

तुम्हारा ही



दिनांक ९.१.३५

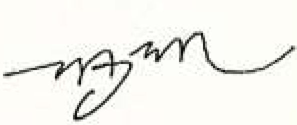
मेरे जीवनसर्वस्व !

हृदयकी सारे पावन भावनाओंका आदर्श रख चित्रकारने 'सौन्दर्य' का चित्र बनाना चाहा। चित्र बना। चित्रके अधरसे पावन आभा फूट पड़ रही थी। चित्रकार सफलताकी उमंगमें एक बार नाच उठा।

पश्चात् एक बवंडर आया। वे भाव उसीमें लय हो गये। चित्रकारका आदर्श भिन्न था। इस बार रागमयी प्रकृति न थी; उसका आवरण मात्र था। इस बार कृत्रिमताका एक पुंज चित्रकारको बरबस अपनी ओर खींच रहा था। चित्रकारने सोचा —— यौवन है, प्रेम है, सुलभ है, बस, और क्या चाहिये। चित्रकारके प्राण नाच उठे उससे भी अधिक प्रियतम !

××× असहाय चित्रकार प्रतिदिन इन दो चित्रोंका निर्माण करता है। कितना मूल्य दोगे प्राणप्यारे !

तुम्हारा ही



दिनांक १६.१.३५

मेरे कर्णधार !

तुम्हारे प्रेममय चितवनके आलोकमें आजतक क्षीण तरणीको खे ले आया। याद करो प्राणेश ! कितनी भीषण आँधी आती थी। तरंगके वक्षस्थलपर तरणी नाचती थी। असह्य प्रलोभन था। तरंग हृदय खोलकर बुलाती थी और तरणी भूलने लगती थी अपने पथको, पर उस समय मेरे सर्वस्व ! तुम स्वयं खेने लगते थे और तरणी चलती थी। मेरे प्राणाधिक ! पुन: खेते–खेते थक गया हूँ। किसका आश्रय लूँ ? बता दो प्यारे ! कुछ देरके लिये पुन: खे दो, प्रियतम !

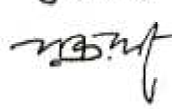
तुम्हारा ही

दिनांक २२.१.३५

प्राणेश !

विशाल भवनकी ओटमें चंद्र हँस रहा है। चाँदनीके क्षीण तारसे अतीत राग उतना ही स्पष्ट बज रहा है। वर्षों पहले शुजा और पियारी, दोनोंने यहाँ ही अपने स्वप्न–जगतका निर्माण किया था। प्रेममय आलिंगनमें आबद्ध होकर संभवतः सोचा था, यह अनन्त है, यह असीम है तथा विश्वके निधानके साथ ही इसका अवसान है, किन्तु प्राणाधार ! आज न तो वह भावुक शुजा है न सुन्दरी पियारी। पता नहीं कि इस विद्युत्मय नगरके हृदयमें उनकी किंचित् क्षीण स्मृति अब है या नहीं। संसार कितना परिवर्तनशील है, इसे देखो और अपनी कीर्तिपर जी भर हँसो, प्यारे ! मैं स्वयं हँस रहा हूँ हृदयधन !

तुम्हारा ही



दिनांक २८.१.३५

मेरे हृदयधन !

रागमय झंकारमें तन्मय होकर पथिक बढ़ रहा था। कितने दिन और अवशेष हैं, इस ज्ञानसे भी अन्यमनस्क हो चला था। तुम्हारी अनन्त अनुभूतिके एक क्षीण आलोकने लीलामय ! उसरी सारी चिंता हर ली थी। इस विद्युत्मय नगरके एक हीन कक्षमें वह एकत्र कर रहा था हृदयके उन टूटे सुरोंको। बजा नहीं सका था। उसी अवसरपर वीण तुमने स्वयं ले ली। अबतक दो सुर सुनाये हैं तुमने ! मधुर हैं नाथ ! उसमें विभोर हो रहा हूँ नाथ ! नाच रहा हूँ प्यारे ! यदि इसी तरह तुम सर्वदा हँसते और मैं नाचता ×--×--×--

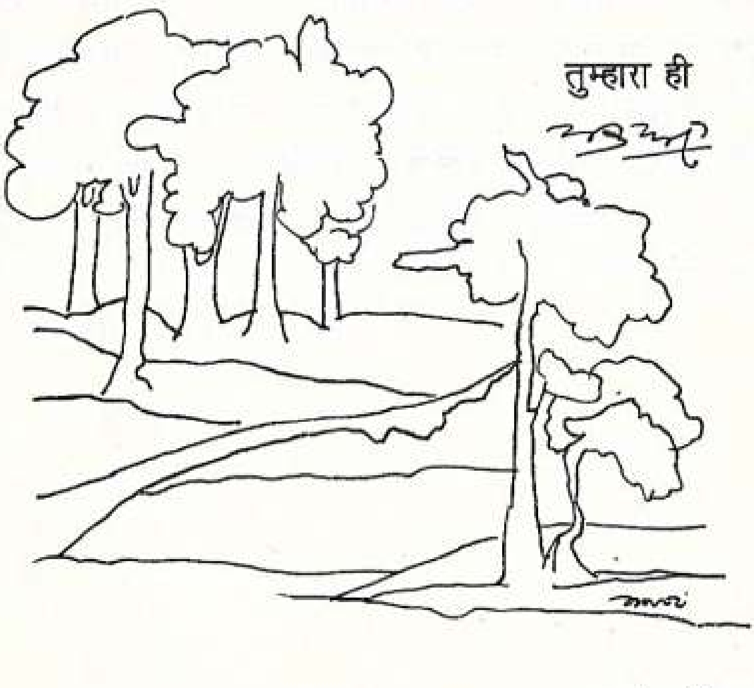
तुम्हारा ही

दिनांक ५.२.३५

मायामय !

संभवत: स्वर क्षीण हो गया, उन्माद शिथिल पड़ गया और पथिकका पथ किंचित् घड़ियोंके बन्द–सा हो गया। कुछ दिन ही पहले लीलामय ! तुमने मेरे लिये एक पद्धति निर्मित की थी। मैंने अनुसरण करना चाहा। कुछने सोचा यह अवरोध इसीका परिणाम है × × मेरे प्रियतम ! यदि संभवत: हो तो इसमें कलंक न लगने देना।

तुम्हारा ही



दिनांक ११.२.३५

प्रियतम !

आत्मदहनका अधिकार पथिक को क्यों नहीं है तथा जीवनके उस पार वेदनाकी करुण लहरी अथवा आनन्दमय स्वर्गिक निर्झर हँस रहा है — इन दो ग्रंथियोंको खोलनेके लिये पथिकका प्राण प्रतिदिन व्याकुल हो उठता है। उस समय अन्तर्यामिन् ! दुर्बल हृदयके सारे संकल्प सान्त्वना देनेमें असमर्थ हो जाते हैं। दर्शनकी उन पंक्तियोंके पथिक पी जाना चाहता है, पर हृदयधन ! वह वहाँ भी पूर्णतया असमर्थ है। प्राणेश ! संभवतः प्रतिदिन ही उसके क्षीण शरीर तथा आकुल प्राणको देखते हो, किन्तु यदि आकर एक बार हँस देते तो अबतक सबका समाधान हो जाता। प्रेममय ! व्यतीत इतिहासको क्या तुम भी नहीं भूल सकते ?

तुम्हारा ही

दिनांक १७.२.३५

अनन्त !

एक किनारे भिक्षुकका मृत शरीर पड़ा था । कोई शय्या न थी । फुटपाथके प्रस्तर राशिपर ही अनन्त निद्रामें लुढ़क पड़ा । चिथड़ामय एक मलिन धोती थी, फटा–सा एक कुर्ता था और पास ही भूमिपर पड़े थे एक पैसा तथा धानके लावेके किंचित् दाने । एक मंडली घेरे खड़ी थी । उससे भी घृणा तथा तिरस्कारका ही भाव टपक रहा था । कुछ गजपर बागला अस्पतालका विशाल भवन खड़ा शवका परिहास कर रहा था । वहाँ इन निर्धनोंके लिये स्थान नहीं । पथिकने इसे देखा । उसके प्राण आकुल हो रहे हैं । उसे बताओ प्रियतम ! इतना नग्न चित्र देखकर भी इस असार जीवनके प्रति ममता क्यों है ? इससे क्या मुक्ति नहीं मिलेगी प्राणप्यारे ? जीवनका यह अंश भी क्या इसी तरह नष्ट होगा जीवनधन ?

तुम्हारा ही

दिनांक २३.२.३५

कर्णधार !

जीवन–तरी किनारे न लगेगी ? आत्मनियंत्रणका प्रश्न नाविकके लिये नया नहीं । कितनी ही बार डाँड खेनेसे थककर तुम्हारे चरणोंमें आकर रोया है । विश्वका अतुल असीम वैभव अमल तरंगके हृदयमें नाचता था और पथिक उसी ओर तरीको खे ले जाता था, किन्तु प्रियतम ! उससे भी दयनीय दशा नाविककी हो पड़ी है । अब वह सेवारके अभेद्य जालपर खिले कुसुमोंकी ओर दौड़ रहा है । उस जालसे तरीका निस्तार नहीं । इतना ही नहीं अन्तर्यामिन् ! क्षुद्रमय अवसरपर भी उसके सारे प्रयास विफल हो रहे हैं । इस तरह उसे कहाँ ले जाओगे नाथ ! यह भी वह नहीं जानता । अबोध तथा निराश नाविकपर दया करो, प्राणेश !

तुम्हारा ही

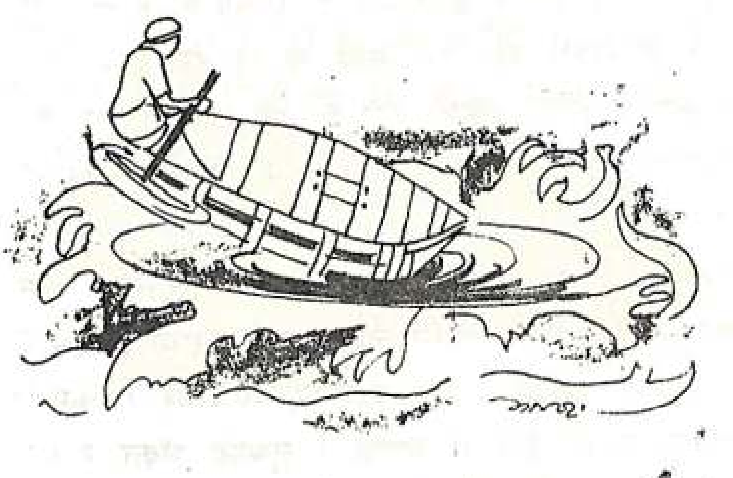
दिनांक १.३.३५

निर्धनके धन !

नाविकके निराश प्राण तुम्हारे अन्तिम आदेशकी प्रतीक्षामें थे । प्रियतम ! किंचित् मात्र भी दुख तथा कभी–कभी स्मृतिके कुछ कण धू–धू करके जल उठते थे और तरी नाचने लगती थी, पर क्षणोंके पश्चात् स्वयं शिक्षिल पड़ जाते थे । इसी तरह बहुतेरे नीरस दिन तथा बहुतेरी चंचल रजनीने नाविककी क्षीण तरीका उपहास किया । आज देखता हूँ करुणामय ! नाविककी हीनता तुम सहन न कर सके और तरी स्वयं खे रहे हो । प्राणेश ! तुम्हारे हृदयमें इतनी करुणा भरी है, इसे नाविक अगणित बार देख चुका हूँ, किन्तु तुम स्वयं आओगे, इसकी कल्पनातक अबोध नाविकने न की थी । इतनी करुणाका प्रतिदान क्या है, यह नाविक नहीं जानता, पर अन्तर्यामिन् ! अपना सर्वस्व लेकर डूबने आया है तुम्हारे प्रेमकी अनन्त धारामें । डूब जाने दो प्रियतम ! अपनी प्रेममयी चितवनसे हँस दो प्राणेश ! तुम्हारा होकर पथिक नाविकने भीख माँगी थी । भीख लेकर भी वह तुम्हारा ही है । तुम्हारा ही होकर उसे बढ़ने दो । बड़े विकट पथका आश्रय तरीने लिया है, किन्तु तुम्हारे मधुर चितवनके

आलोकमें वह आनन्दमय है हृदयधन ! ........... प्रेममय ! तुम्हारे चरणोंमें निराशा नहीं । उसपर तुम स्वयं तरी खे रहे हो ।

तुम्हारा ही



दिनांक ७.३.३५

अनन्त !

दाराके शोणितसे प्लावित औरंगजेबका विशाल साम्राज्य आज नहीं है। वर्षोंकी बात है मयूर सिंहासनपर आसीन अबोध औरंगजेब जीवनके उद्देश्यकी विवेचना कर रहा था। सामने दाराशिकोहका कटा सिर था। औरंगजेबने सोचा —— अब दारा इस संसारमें नहीं, मुगल साम्राज्यका असीम वैभव मेरा है।

दिन बीतने लगे। निराश शाहजहाँने अपनी इह–लीला संवरण की। औरंगजेबका उत्साह शिथिल पड़ गया। कुछ दिन और बीते। अंतमें वह क्षण आया। पश्चात्ताप करते तथा आहें भरते उसने अनन्त यात्राके लिये प्रस्थान किया। ठीक अंत समयमें उसने तुम्हें पहचाना।

प्रियतम ! तुमसे छिपा नहीं। प्राय: मनुष्य–जीवनका इतिहास इसी तरहका होता है। यदि पथिक बच सकता दयामय !

तुम्हारा ही

दिनांक १३.३.३५

जीवनधन !

सागरके विशाल वक्षस्थलपर किलोल करती असंख्य तरंगोंको सूर्यकी रश्मियाँ अपने हृदयमें छिपा लेती हैं। यहाँ ही अभिनयका प्रारंभ है।

तरंगका नया जीवन कितना रहस्यपूर्ण है प्रियतम ! मेघके आवरणमें तरंग नाचती है। सागर–वियोगके दुखका अनुभव उसे नहीं, किन्तु भाग्यहीनाके जीवनमें शांति नहीं। गगनके पुनीत अतुल अचल अञ्चलका सहवास पाकर भी उसका हृदय जलता ही रहता है। पवनके प्रवाहमें उड़ती हुई वन--उपवनका स्पर्श करती है, किन्तु शांति नहीं। अंतमें तरंगको तुम्हारे निर्धारित विधानके अनुसार शीतलता मिलती है। फलस्वरूप वसुन्धराको चूमती हुई आनन्दके आवेशमें शब्द करती हुई पुन: सागरसे मिल जाती है।

प्राणाधिक ! मानव–जीवनका प्रारंभ तथा अवसान इसी तरह होना है। फिर इतनी ममता क्यों ? इसके लिये इतना दुख क्यों ?

तुम्हारा ही

दिनांक २०.३.३५

लीलामय !

इसी कक्षमें आजसे एक वर्ष पहले पथिक होलीका एक राग बजाकर नाच उठा था। निशा सुन्दरी उस रोज हँस रही थी, आज भी हँस रही है। पवनके स्पर्शसे भाव उस दिन नाच उठे थे; आज भी समीर अतीतकी स्मृतिके उन टूटे तारोंमें झंकार भर रहा है, पर पथिककी जीवन-धारा भिन्न दिशामें प्रवाहित हो रही है। अवश्य ही प्राणप्यारे ! तुम उसे अपनी ओर ले जा रहे हो, किन्तु तुम्हारे अनन्त रूपमें लय होनेमें कितना विलम्ब है, इसका ज्ञान नहीं। जो हो प्रियतम ! होलीके पुनीत रजनीके आलोकमें उन क्षुद्रतम भावोंको तुम्हारे चरणोंमें सजाता हूँ। अन्तर्यामिन् ! विश्वास है, अनादर न करोगे।

तुम्हारा ही

दिनांक २७.३.३५

प्रेममय !

काले मेघ उठ रहे थे । उच्छृंखल पवनने पथिकका स्पर्श किया । एक क्षणके लिये विचारधारा शिथिल पड़ गयी। पथिकने सोचा —— लूट लें आनन्द, न जाने पुनः कब अवसर मिले ........ ।

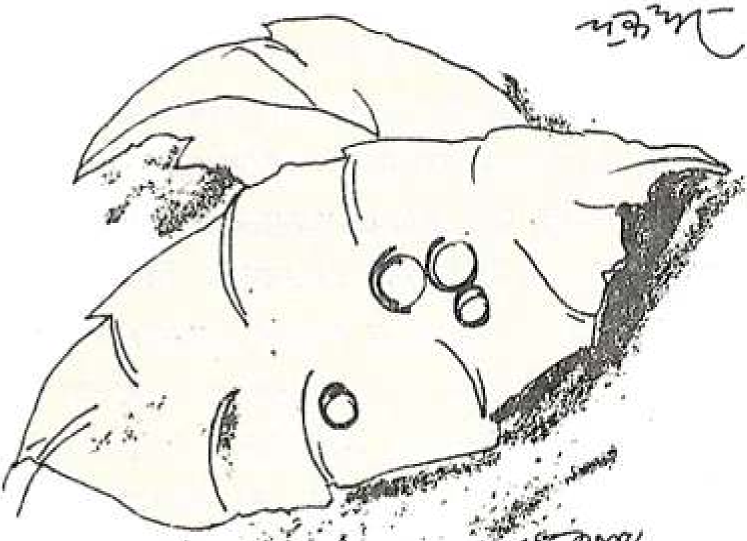
रात्रिके प्रथम पहरका अवसान हो रहा था, किन्तु था पथिक ज्ञान शून्य । तुमने कहा —— 'चलो' । वह चल पड़ा । विद्युत् दीप हँस रहे थे, पथिकके हृदयमें भी आनन्दके ज्वार उठ रहे थे । उमंगकी सीमा न थी प्रियतम !

प्राणेश ! तुम्हारे उस अनन्त सुरके प्रत्येक कंपनके साथ पथिकके प्राण नाच रहे हैं । तुम्हें भी उसे नचाकर संभवतः आनन्द आ रहा है । वह कितना अधम है, इसे जानकर भी नचा रहे हो । नचाओ प्यारे ! खूब नचाओ । तुम्हारे नायकत्वमें वह अन्तिम क्षणतक नाचना चाहता है जीवनसर्वस्व !

किन्तु प्राणाधार ! यदि नचाना आरंभ किया है, तब उसपर किंचित् और सदय हो जाओ । अधमके पास साधन कहाँ अन्तर्यामिन् ? पथिकने जीवनभर तुम्हारे नामसे

अपनेको ही भुलाया है। दयामय ! तुम यदि न्याय करते, तब पथिककी क्या दशा होती, इसे तुम्हीं जानते हो। सदा तेरी दयाका आश्रय लेकर पार हुआ है। पुनः पथ दिखा दो प्राणप्यारे ! और किससे कहूँ दुखियाके धन ! अबोध शिशुकी असमर्थताका ज्ञान प्रेममयी जननीको ही होता है। अतः ............। और क्या कहूँ, अन्तर्यामिन् !

तुम्हारा ही



दिनांक ३.४.३५

प्रियतम !

पता नहीं, बवंडरका आरंभ कहाँ हुआ, किन्तु मैंने शैशवकी क्षीण स्मृतिके आधारपर एक इतिहासका निर्माण किया है और उसे तुम्हें सुनाऊँगा प्राणेश ! सुन लो और पुनः एक बार अनन्त हँसीका सुर भर दो मुझमें, जिससे जी भरकर हँस लूँ प्राणाधिक !

विश्वके एक नीरव कोनेमें एक भ्रमर अपनी शैशव कल्पनामें विभोर था। वृद्धा मधुकरीसे ही एक मात्र संबंध रखनेवाले अबोध तथा अल्पवयस्क भ्रमरका हृदय सांसारिक ज्ञानसे एक बार शून्य ही था। नये किसलय समीरके स्पर्शसे नाचते थे, कुसुमके भारसे बेलियाँ प्रकृतिके क्रोडमें मचलती थीं, पपीहा अपना प्राण लगाकर पुकार उठता था; इस तरह सारे आकर्षण अज्ञानी भ्रमरको घेरे रहते थे, किन्तु वह सब कुछ देखता हुआ भी चंचल न होता था। उस समय केवल एक पवित्र मुस्कानकी आभा भ्रमरके नन्हें होठोंसे फूट पड़ती थी और आकर्षणका अस्तित्वतक उसीमें लय हो जाता था। कुछ वयस्क भ्रमर उसे कुसुमोंकी मोहकताका इतिहास सुनाते थे, कुछ सुनाते थे तड़ागके उस पार बसे हुए मधुकरोंके परागपानकी मनोहर गाथाएँ, किन्तु सभी निरर्थक। तनिक भी उल्लासका संचार उसके हृदयमें न

हुआ । शुष्क तथा जर्जर पत्रोंसे निर्मित उस छत्तेसे शैशवकी चपलतामें सत्यका अन्वेषण संभव नहीं, यह उसने वृद्धा मधुकरीके प्रेममय अंचलमें रहकर सीख लिया था, किन्तु यह उसके संकल्पको विचलित न कर सका । समीरके प्रबल झोकोंमें उसने अपनेको छोड़ दिया । प्रियतम ! अंधकारमें ही प्रकाशका उद्रेक होता है, यह तुम्हारा नियम है, अतः भ्रमरका परिवर्तन भी ऐसा ही हुआ । प्रकाशके संचालक मेरे हृदयधन ! तुम थे, किन्तु निमित्त दूसरा हुआ । अपने ही परिवारके एक वयस्क भ्रमरसे उसने दीक्षा ली । पथ कठिन है, यह जानता हुआ भी साधनोंमें संलग्न हुआ । निकुंजके एक निर्जन प्रान्तमें उसने तपस्या आरंभ की । अबतक मधुपानके लिये जीवन धारण था । अब जीवन धारणके लिये मधुपान हुआ । सिद्धान्तके रूपमें जो कुछ उसके पास था, उसने सबको कार्यरूपमें परिणत करना चाहा । अनेक विपत्तियाँ आयीं । वयस्क भ्रमरोंने उपहास किया । किसीने अभिमानी समझकर अभागे भ्रमरका तिरस्कार किया, किसीने उसे मूर्ख समझकर उसपर दया की । सब कुछ भ्रमरने सुना, पर संकल्पपर दृढ़ रहा, किन्तु क्या यह साधना तुमसे मिलनेके लिये थी ?

तुम्हारा ही

जीवनधन ! दिनांक ३०.४.३५

सुदूर क्षितिजके पास कुसुम अठखेलियाँ कर रहे थे। निकुंजके वे पुष्प उनकी तुलनामें हीन थे। उनका सौरभ विश्वव्यापी था। उनके संसर्गका आनन्द लेनेके लिये असंख्य मधुकुरोंने अपना प्राण विसर्जन किया था। उस महान गौरव, जिसकी इच्छा अपने जीवनमें सभी करते हैं, उसकी प्राप्ति एक मात्र इस मिलनसे ही संभव थी। वैभवपुंज, असीम आदर इन्हीं कुसुमोंके पार्श्व देशमें लोट रहे थे। साधनामें संलग्न भ्रमरकी दृष्टि इन्हींकी ओर जा लगी। एक साथ इतने प्रलोभन ! किंचित् क्षण पहले भ्रमरने अभिलाषाओंकी जो समाधि दे दी थी, वह छिन्न-भिन्न हो गयी। उन्हींसे नयी-नयी संभवत: कुछ परिमार्जित अभिलाषाओंका उद्भव हुआ। स्वार्थमय इन अभिलाषाओंकी मोहकतामें भ्रमर अपनेको भूल गया। साधनाका जो भी उद्देश्य पहले था, वह बदल गया। भ्रमर दौड़ने लगा उस ओर ही। कितना आश्चर्य है ? —— असारताका ज्ञान, उसका परिणाम, पुन: असारतामें निमग्नता, —— जीवन नाटककी तीन यवनिकाएँ किंचित् क्षणोंमें ही गिरीं।

तुम्हारा ही

मधुप

दिनांक.९.५.३५

अन्तर्यामिन् !

अनेक रहस्यमय दिन तथा अनेक विषादमयी रजनीकी स्मृतियोंसे रँगा साधनाका यह युग भ्रमरके जीवनमें चिरस्मरणीय रहेगा । उस दिनका प्रभात मेरे प्रियतम ! आज भी मनके एक प्रान्तमें नाच रहा है । उस दिनसे आठ वर्ष बीत गये; अगणित प्रभातके सौन्दर्यका आनन्द लिया, किन्तु किसीको उसके समान न पाया । वह अलौकिक–सा था । उस दिन उमंगका ज्वार भ्रमरके हृदयकी सीमाका अतिक्रमण कर चुका था । अबोध भ्रमरको पता नहीं था कि दूसरे ही क्षण असीम विषादकी भट्टी, जो कभी न शीतल होनेवाली तथा जो आजतक अविराम गतिसे छूटकर जल रही है, जल पड़ेगी । यह स्वभाविक है हृदयधन । प्रचंड आशाके गर्भसे ही अनन्त निराशाका जन्म होता है । वस्तुत: दिनके सुनहले आलोकसे ही रजनीके अंधकारकी उत्पत्ति होती है । इसी तरह सुखकी सीमाका अतिक्रमण करनेपर विषादके साम्राज्यमें प्रवेश नितान्त स्वाभाविक है । यही हुआ आराध्य देव ! किंचित् क्षण पहले हँसते हुए भ्रमरकी सारी अभिलाषाएँ, उज्जवल भविष्यके सारे मनोहर स्वप्न, सब कुछ आँधीके एक झोंकेकी तरह अनन्त आकाशमें

लय हो गये । निमित्त हुआ निकुंजके अधिवासी भ्रमरोंसे निमंत्रित अतिथि स्वरूप एक वयस्क भ्रमर, जिसके हृदयमें तुम्हारे अबोध भ्रमरको सदाके लिए नरकमें फेंक देनेकी आसुरी लालसा सम्भवतः प्रथम दर्शनसे ही जाग पड़ी थी । नरकके यात्रियोंकी उत्कट इच्छाओंमेंसे 'अपना संगी खोजना' पहली इच्छा है । वयस्क भ्रमरने अबोध भ्रमरको ही अपनी यात्राका सहचर बनाना चाहा, किन्तु अबोध भ्रमरके प्रति तुम्हारा असीम प्यार रहते तुम क्योंकर मौन बैठ सकते थे ! आये, प्राणेश ! ठीक क्षणमें अबोध भ्रमरकी रक्षा करने आये । तुम्हारे प्रेममय चितवनके आलोकमें वह पवित्र निकल सका । यह है विश्वकी असारताका दूसरा निदर्शन— भ्रमरके जीवन नाटककी एक और यवनिका ।

तुम्हारा ही



दिनांक १८.५.३५

करुणामय !

भ्रमरके साधनायुगका अवसान और भी करुणा पूर्ण है। भ्रमरने रो-रोकर अनके बार तुम्हें रुलाया है, किन्तु आज न रोओगे, क्यों कि भ्रमर स्वयं नहीं रो रहा है। जिस दिन वह रोता है, उसकी सान्त्वनाके लिये तुम भी रोते हो। आज वह उसे स्मरण कर हँस रहा है, अत: तुम भी हँसोगे। प्रणाम प्यारे !

शीत अट्टहास कर रहा था। वृद्धा मधुकरीके अंचलमें भ्रमरने शीतकी उत्कटता कभी न देखी थी। अचानक इतना शीत ! भ्रमर व्याकुल हो उठा। अनेक भ्रमर विश्राम कर रहे थे, बहुतोंने शीतकी ऐसी कटुताका अनुभव किया। अनेक बार किया था, अत: उनकी व्याकुलता सीमित थी, किन्तु प्रेममय ! तुम्हारा भ्रमर सह न सका। उसने सहायताकी चाहना की और उसे मिली भी। आनन्दमें वह एक बार और अपनेको भूल गया। शीतमें इच्छित तापकी प्राप्ति ! वह हँसने लगा। तुम भी हँसने लगे प्रियतम !

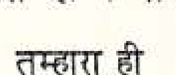
पुन: शीत अट्टहास कर रहा था। क्षुधा तथा श्रमके कारण भ्रमरके प्राण संकटमें थे। उसपर भीषण सर्दी, किन्तु

उसने पुन: कामना की और पाया मधु तथा विश्रामके लिये पर्ण कुटीर । चन्द्रदेव हँस रहे थे । अभी अभी राहुने उन्हें मुक्ति दी थी । उस दिन भ्रमर तुलना कर रहा था अपने आनन्दकी चन्द्रकी प्रफुल्लतासे ।

इस प्रकार दो बारके स्नेहमय दानसे स्नेहका वह क्षीण सूत्र सुन्दर दीखने लगा, किन्तु मलिन होते देर न लगी । जिस दिन सुन्दर था, उस दिन सूत्रका अस्तित्व ही मिट गया । इतनी शीघ्रतासे बंधन, पुन: इतनी शीघ्रतासे मुक्ति, इसका कारण भ्रमरको पता नहीं । हाँ, तुम अवश्य जानते हो प्रियतम ! संभव है भ्रमरकी जीवनधाराको वर्तमान रूपमें प्रवाहित करनेके लिये ही, पथमें प्रस्तरके वे खण्ड तुमने बिछा रखे थे ।

अन्तर्यामिन् ! मर्मवेदनाके इतिहासको स्पष्ट कर देनेसे उसकी सरसता मिट जाती है, अत: रहने देता हूँ भ्रमरके जीवनके इस दृश्यको इसी रूपमें । भ्रमरकी साधनाका अवसान इसी दृश्यमें हुआ, बस इतना ही । करुणता कहाँ है, प्राणाधिक ! तुम जानते हो । सभी जाननेके इच्छुक जान सकते हैं प्रियतम !

तुम्हारा ही



दिनांक २६.५.३५

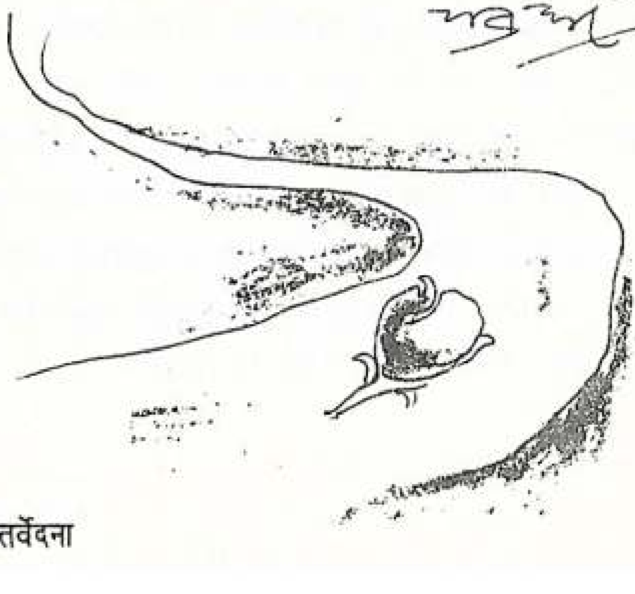
आराध्यदेव !

वनमालीका प्रेम पाकर किंचित् कलियाँ हँस रही थीं। उनमें थी शैशवकी चंचलता। यौवनका आभास मात्र ही था प्रेममय ! उनमेंसे एकने भ्रमरके पथमें आकर उसकी उन्मुक्त गतिका अवरोध करना चाहा। भ्रमर पथ भूलने लगा; कलीकी उत्कण्ठा बढ़ने लगी। वस्तुत: क्या हो रहा है, संभवत: दोनों अनभिज्ञ थे। अबोध भ्रमर व्याकुल होने लगा। निशामें यौवनको आलोकित करते हुए चन्द्र विश्वकी ओर एकटक देख रहा था। पृथ्वीतलके निवासियोंके गर्म निवासको अपनी शीतल मधुमय चाँदनीसे तर कर देना चाहता था, किन्तु विधिका विधान प्रतिकूल है। अभागे जीवनकी व्याकुलता इस मधुमय शीतल दानसे और भी बढ़ती है, अत: भ्रमरके क्षुब्ध हृदयमें चंद्रकी अमल चाँदनी भी शांति न ला सकी। चन्द्रकी इस उन्मुक्ततापर वह और भी व्याकुल हो उठा। लालसाकी आँधी बह चली। अभिलाषाओंके अनेक झोंके आये। भ्रमरकी चाह बहुत बड़ी थी, किन्तु उसका मूल्य उसके पास नहीं था। इस तरहका क्रय-विक्रय कब संभव था प्रियतम !

अभिलाषाओंकी असारता प्रकट हो गयी। भ्रमरका हृदय बैठ गया, किन्तु वह प्रसन्न था, क्यों कि वह पवित्र था। तूने, मेरे प्राणेश ! उसकी पवित्रताका अपहरण होने नहीं दिया।

तुम जानते हो जीवनसर्वस्व ! भ्रमरके जीवनका यह दृश्य कितना विचित्र है ? वर्षों पहलेकी घटना है, किन्तु आज भी उसकी अनन्त स्मृतिके साथ ही उसके भावोंका उद्भव तथा अवसान होता है। उस समय भ्रमरके प्राण चंचल हो उठते हैं। देखें, उसे कहाँ शान्ति मिलती है।

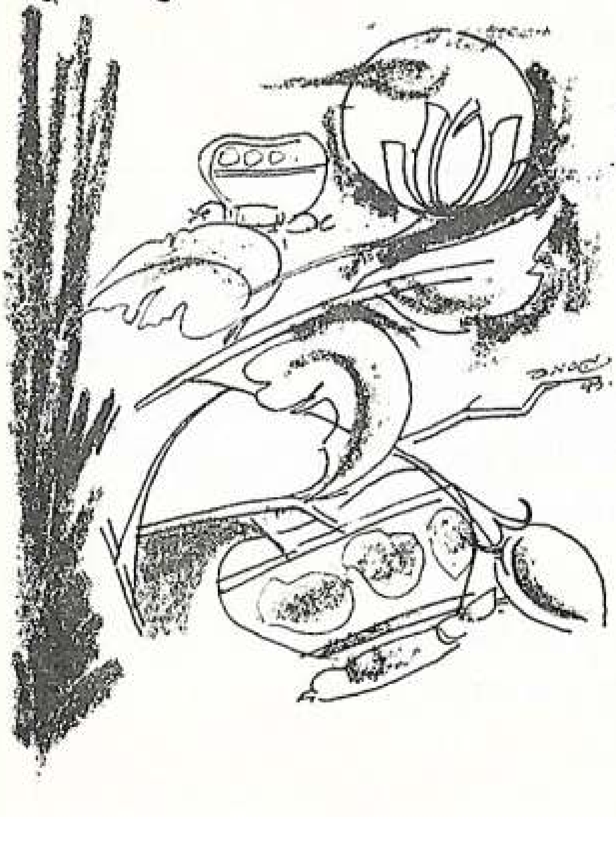
तुम्हारा ही



दिनांक ४.६.३५

जीवनधन !

उस दिनसे अबतक अनेक बार चन्द्रने अपनी मधुमय आँखोंसे संसारको निहारा, कली तथा भ्रमर दोनोंने ही उतनी ही उत्सुकतासे चंद्रका स्वागत किया, पर आज न तो वह भ्रमर ही है और न वह कली। समयके अस्थिर प्रवाहमें पड़कर दोनोंने ही तट छोड़ दिया है, किन्तु एक दूसरेके बहुत अंतर पर है।



तुम्हारा ही

मधुमा

दिनांक १८.६.३५

प्रियतम !

बवंडरकी विवेचना करने बैठा था। कर सका या नहीं, यह तुम जानो। हाँ, अब इसमें विस्तारकी आवश्यकता नहीं। किंचित् और सुना लेनेके बाद इस अध्यायकी समाप्ति आज ही कर दूँगा आराध्यदेव ! सुनो और उसे घटनाक्रमसे अनन्त स्मृतिकी गोदमें सजा दो। यदि इस महान विश्वका एक भी हृदय इस गाथासे शांति पा सकेगा तो तुम्हारे द्वारा मुझपर निहित कर्तव्यको सफल हुआ समझूँगा मेरे हृदयधन !

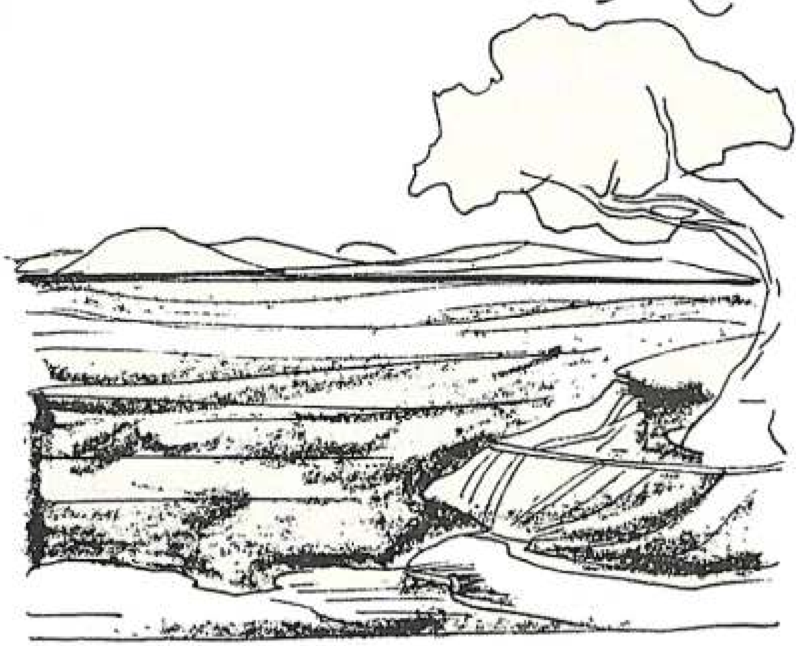
उसीकी पुनरावृत्ति ! ........................
प्रथम शैशवका समीर। उसमें अशान्तिका नाम नहीं, पर दिन उठते ही उत्सुकताकी प्रबल आँधी आयी। अशांत हूँ उस दिनसे ही।

इस बार आयी शिथिलता और आरम्भ हुआ साधना तथा तितिक्षामय जीवन क्रम। बहुत दूर स्थित शांति मार्गकी धारणा हुई उसी दिन।

अंतमें आये व्यथाका असह्य भार लेकर जीवनपथके वे रोड़े, जिन्हें पार करना ही है। पथकी विकटताका ज्ञान हुआ उसी दिन।

यदि जीवनका किंचित् भी रहस्य समझ सका हूँ तो वह इतना ही है। बवंडरकी गतिका ज्ञान इतना ही है। बवंडरका आरंभ निश्चित नहीं कर सका, प्राणप्यारे !

तुम्हारा ही



दिनांक १०.७.३५

प्रियतम !

एक ही स्थानपर रखे हैं अमृत तथा विषके दोनों घट । तुम्हारे प्रेममय हाथोंसे दोनोंने ही पाया है अप्रमेय सौन्दर्य । दोनोंमें ही असीम सौन्दर्य है । चन्द्रकी शुभ्र किरणोंमें दोनों ही समान सुन्दर देख पड़ रहे हैं । दोनोंको ही पीनेसे अखण्ड समाधि लग सकती है । यहाँ है उसका अनुमान और पथिक आया है उन्हींके पास । बहुत दूर चलकर थक गया है । प्यासकी उत्कट ज्वालासे अशांत है । अपनी विवेचनाशक्ति उसने खो दी है । हृदयधन ! वास्तविक अमृत कौन है, वह नहीं पहचान सकता । उसे यह बता सकोगे ?

किन्तु प्राणेश ! कुछ क्षण पूर्व उसने स्पष्ट सुना है । तुमने भी हँस दिया था । किसीने स्पष्ट कहा था —— दोनों ही विष हैं । अमृत तुम्हारे पास है । फिर क्यों नहीं दयामय ! एक घूँट उसे पिला देते । जिसे आजीवन भोजन दिया तथा दोगे, उसे मेरे सर्वस्व ! इतना कातर देखकर भी उसकी प्यास न बुझाओगे ?

संभव है अन्तर्यामिन् ! तुम सोचते होगे कि वह इस तृप्तिका मूल्य नहीं दे सकेगा । उचित है प्राणाधिक !

जिसने अगणित बार प्रतिज्ञा की तथा अन्तमें तुम्हें ठगनेकी चेष्टा की उसकी बातोंका विश्वास कोई भी नहीं करता। अत: अन्तर्यामिन् ! कैसे कहूँ कि पथिक मूल्य देगा। तुम विश्वास कर लो। किन्तु एक बात है, दयामय ! तुम उस दिन भी जानते थे कि तुम ठगे जाओगे, पर तुमने उसकी प्यास बुझायी थी। आज भी जानते हो, हृदयेश ! इस प्रतिज्ञाका अन्त कैसा होगा। पथिकने दण्ड भी स्वीकार किया है, पर वह सहर्ष सहन कर सकेगा या नहीं, यह तुम आज भी जानते हो सर्वज्ञ ! इन सब गाथाओंको तुम्हारे प्रेममय चरणोंमें समर्पण कर वह पुन: आया है तुम्हारे ही पास। उसे अपने पाससे अमृतका एक घूँट पिला दो। अभी पथ अनन्त है। बहुत दूर जाना है। अगणित बार प्यास लगेगी। तुम पानी भी प्रत्येक बार अवश्य पिलाओगे दयामय ! अत: इस बार भी एक घूँट उसे पिला दो प्रियतम !

तुम्हारा ही

दिनांक २१.७.३५

प्रियतम !

घटनाके उस पार क्या है, यह नहीं जानता। क्षणभंगुर जीवनमें बिरलेको ही इसका ज्ञान होता है, किन्तु आजतक देखता आया हूँ, अंतरंग ! अमंगलके आवरणमें ही मंगलकी ज्योतिर्मयी दीपशिखा अन्तर्हित रहती है। क्यों ? यह भी नहीं जानता। संभवत: इसीमें तुम्हें आनन्द आता है। जिन्हें अपनाते हो, उन्हें पहले रुलाते हो और फिर देते हो अपने प्यारका अनन्त दान, जिसमें नहाकर वे फिर नहीं रोते। तुम्हारा नाम ही अज्ञेय है, फिर अधम पथिक तुम्हें कैसे समझ जाय।

सुनो प्राणनाथ ! एक ओर पथिककी सारी प्रतिष्ठा, उसका सारा गौरव धूलमें मिल रहा है और दूसरी और तुम्हारा आह्वान। पहलेकी उसे चिंता नहीं; भले ही साहसका अभाव हो, पर प्रियतम। दूसरेका अनादर तो वह कर ही नहीं सकता। लीलामय ! क्या ही सुन्दर चित्रण है ? अंतमें तुमने दोनोंको कार्य–कारण बना दिया जीवनधन !

अब रही निर्वाहकी समस्या। जिसने तुम्हारी प्रेममयी छायामें दुस्तर तथा भयानक पगडंडियोंको पार कर लिया है, वह तुम्हारे द्वारा जलाये प्रदीपके आलोकमें तुम्हारा

अनुसरण अवश्य कर लेगा। आलोककी क्षीण रेखाके लिये पथिक अपना सर्वस्व तुम्हें अर्पण कर रहा था और तुम हँस रहे थे। तुम जलाकर चले गये, यह वह नहीं देख सका। प्रकाशसे उसकी दृष्टि तिलमिला रही है, पर वह तुम्हें उस समय देख रहा है कि तुम हँस रहे हो। प्रियतम ! हँसो, जी भरकर हँसो, वह भी हँस रहा है, किन्तु अधिक चलकर आया है, अतः किंचित् क्लांत हो रहा है। तनिक हाथ पकड़ लोगे प्राणेश !

तुम्हारा ही



दिनांक ३१.७.३५

प्राणाधिक !

तार पुनः बज उठे हैं। सुर निकल रहा है। सुनो —— रात्रिका प्रथम प्रहर था। एक परेवा मिलने जा रहा था परेईसे। प्रथम मिलन था। भावुक परेवाके हृदयमें आँधी बह रही थी। वह अचेत-सा हो रहा था। विश्वकी निस्तब्धतामें उसे किसीने न देखा। तुमने प्रियतम ! अवश्य देखा था, पर तुमने जगाना उचित न समझा। तुम भी निराले हो, मेरे सर्वस्व ! ×××××× रजनी हँस पड़ी। विचित्र मिलन हुआ। प्रथम मिलनके अवसरपर ही परेवा तथा परेई दोनोंने ही भिन्न-भिन्न पथका आश्रय लिया। परेई परेवाका प्यार न पा सकी। परेवा चाहता था जिस हृदयको, परेई उससे वंचित थी। तुम ऐसा ही चाहते थे। तुम्हारी इच्छा भी निराली है मेरे हृदयधन !

परेवा उड़ रहा था निराश, पर स्वच्छन्द। अविराम गतिसे उड़ते रहकर थक गया था। तुमने चाहा विश्राम देना, अतः बंधु-रूपमें एक परेवाको भेज दिया। आश्चर्य है, एक ही क्षणमें परेवाने अपना सब कुछ उसे दे दिया। पवित्र बन्धुत्वके नामपर उसने दान कर दिया अपना संचित पुण्य। नये परेवाने कितना स्वीकार किया, यह परेवा आज

भी नहीं जानता । तुम्हारा काम और भी निराला है प्रियतम !

तुम उसे उड़ा रहे हो और परेवा उड़ रहा है । उसका नया बंधु परेवा भी उसीके साथ उड़ रहा है, विश्राम लेनेसे ही दोनों पृथक् हो जायेंगे, अतः दोनों ही उड़ते रहेंगे । तुम रोक दो, यह दूसरी बात है, अन्यथा दोनों ही उड़ते रहेंगे । उड़ते हुए कहाँ जा रहे हैं, यह भी तुम जानते हो । पर इन सबका भार तुमपर है, इसे अपने निरालेपनमें भूल तो नहीं गये, प्राणेश ?

तुम्हारा ही



दिनांक ११.८.३५

प्रियतम !

तुम्हारा यही विधान था। उपवनके छोरपर स्थित वे प्रसार–खण्ड न रोक सके। अंतमें फूलने बाह्य संसार, प्रसारखण्डके उस पार क्या है, यह देख ही लिया।

फूलने देखा —— एक रमणी है। फटे वस्त्र, अविरल तप्त अश्रुधारा, वेदनाके भारसे दबी हुई। भूतकी असीम सुन्दरताके किंचित् चिह्न अब भी अवशेष थे, पर बहुत अस्पष्ट। चाह भरी दृष्टि और आह भरा एक करुण आह्वान। उसे आवश्यकता थी फूलोंकी। उसके जलते हुए हृदयको एक मात्र फूल ही शीतल कर सकते थे। फूलोंके रससे ही वह धधकती भट्टी बुझ सकती थी। इसकी अवहेलना फूल न कर सका।

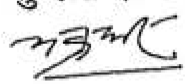
प्रियतम ! फूलने एक बार पीछे दृष्टि फेरी। वनमाली खड़ा था किंकर्तव्यविमूढ़। "××× हाय रे भाग्य, जीवनभर हृदयके रक्तसे सींचा, पर अंतमें मूल्य देने जा रहे हो दूसरेको, निर्मोही ! ………………" वनमाली बेसुध हो रहा था। फूलका हृदय उफानसे भर गया था, फिर भी वह शांत था। तुम्हारी इच्छा प्रियतम ! उसे स्मरण थी। उसी समय एक दूसरे फूलने पहले फूलसे जानना चाहा बाहरका

इतिहास। अबोध फूल अबतक नहीं जानता था। हाँ, उसने सुना था कुछ। इसी उत्सुकतामें वह भी माथा उठाये इधर देख रहा था। अब समय नहीं था। पहले फूलने कहा —— 'चलो उस पार कूद चलें। देखो, इस पार ही गिर न जाना'।

संध्याकी छाप पड़ रही थी। नीचे थे असमर्थ दो भिन्न प्रस्तर–खण्ड और ठीक ऊपर झूल रहे थे दो फूल। दोनों दो वनमालीके धन थे। वनमालियोंका भविष्य अंधकार होने जा रहा था। फूलोंके ह्रदयमें एक बार फिर भी उफान आया। इस बार दोनों ही बेलियोंसे टूटकर रमणीकी गोदमें आ गये। दोनों बेलियाँ आनन्दसे झूल रही थीं। दोनोंने अपनी सारी शक्ति लगाकर फूलोंको ऊँचा उठाया था। बेलियोंका इतना दुस्साहस, प्रस्तरखण्डका इतना अपमान-- दोनों वनमाली अवाक् थे।

प्राणाधार! स्वयं कृतघ्न तथा दूसरेको भी कृतघ्न बनानेकी लांछना फूलके माथेपर है। संसारकी दृष्टिमें वह हेय है। तुम उसे हाथमें लेकर प्यार कर सकोगे, प्राणेश ?

तुम्हारा ही



प्रियतम ! दिनांक २३.८.३५

सुनता हूँ एक दिन प्रलय होता है। प्रलय वस्तुतः क्या है प्राणाधार ? पुराणके उन पृष्ठोंपर अनेक कथाएँ लिखी हैं। पुराणकारने प्रलयका चित्र आँकनेमें अपनी सारी मर्मज्ञताका आश्रय लिया है, किन्तु चित्रका खोखलापन भी उतना ही स्पष्ट है मेरे सर्वस्व ! सत्य तो यह है किंचित् मात्र भी प्रलयकी मीमांसा न हो सकी है। संभव है, चित्रकारने तुम्हारे वास्तविक रूपको नहीं पहचाना अथवा विश्वको भुलानेके लिये उसने सत्यको नितांत क्षुद्र आवरणसे ढक दिया है।

हाँ, एक दिन एक कथा सुननेमें आयी थी। उसके बहुत दिन आगेसे जानता था कि विश्वके प्रत्येक कणका आविर्भाव तुम्हींसे होता है। उस दिन किसीने कहा था — 'विश्वके प्रत्येक कणका तुममें लय हो जानेको प्रलय कहते हैं'। परिभाषा मेरे अनुकूल थी हृदयधन ! हठात् इसी सम्बन्धमें एक प्रश्न उठ पड़ा है। प्रलय अनिवार्य है प्रत्येक कणका। फिर हृदयके किंचित् भावोंका प्रलय क्या संभव नहीं है ? इसका समाधान तुम्हें करना होगा जीवनसर्वस्व !

तुम्हारा ही



दिनांक ३.९.३५

जीवनसर्वस्व !

बालकके पास एक टूटी छतरी थी । एक हाथमें टीनका चौखूँट कटा हुआ पानी पीनेका एक पात्र । गलेमें एक झोला था टाटका, जिसमें दोपहरकी कमाई संचित थी । एक मलिन धोती और एक ओढ़नीके बीच बालकके गोरापनका किंचित् मात्र भी मूल्य अवशेष न था । माँके पास थी फटी हुई एक मैली साड़ी तथा सिरपर वर्षासे बचनेके लिये टाटकी एक घोंघी । इस तरह अंधी माँ, संभवत: जन्मसे ही अंधी, अपने पुत्रके कंधेपर हाथ रखकर बढ़ती जा रही थी । सामने सियालदह स्टेशन था । कितने आये गये, पर किसीने भी इस अंधी भिखारिणी तथा शिशु भिखारीकी ओर न देखा । फुटपाथके एक प्रन्तमें दोनों ही बैठ गये । शिशुने झोलीसे आमका एक पका फल निकाला । तृप्ति भरी दृष्टिसे एक बार निहारकर शिशुने फल खाना प्रारंभ किया । तीन बार मुँहमें डालकर रस चूसा । भिखारिणीने कहा —— 'किंचित् मुझे भी दो' । इसमें कितनी करुणता, कितनी लालसा, कितनी चाह भरी थी, इसका अनुभव बिरले ही कर सकते हैं, प्राणाधिक !

बालकने किंचित् छिलका मात्र तोड़कर दे दिया । माँ उसे खाने लगी । संतोषकी आभासे अंधी भिखारिणीका

मुख चमक उठा। हाय रे माताका हृदय ! समस्त संसार अंधकारमय है, अत: जिस पुत्रको देख भी नहीं सकती, उसके प्रति इतनी ममता !!

दो बार और मुँहमें रखनेके पश्चात् शिशुने संपूर्ण फलको ही माँके हाथ पर रख दिया। माँका आधा अंश है, यह शिशु न भूला। माँके हर्षकी सीमा न थी। मुट्ठी सहित गुठलीको एक बार ही मुँहमें रखकर, पुन: माँने शिशुके हाथपर रख दिया। 'तुम्हीं खा जाओ', इन शब्दोंमें कितना प्रेम है, इसे चाहनेकी इच्छा रहते हुए भी न थाह सका, दयामय !

उसी क्षण याद आया माँका मुख। मेरे लिये संसार सूना है, अत: उस ओर विशेष भय नहीं। यदि हो भी तो तुम्हारे प्रेममय चितवनके आलोकमें निर्विघ्न, तुममें मिल जाऊँगा, यह निश्चित है। उसके प्रति कर्तव्यका क्या होगा, यह उसी क्षणसे सोच रहा हूँ। प्रियतम ! यह नितान्त सत्य है कि तुम्हारे आह्वानकी अवहेलना मैं नहीं कर सकता, अत: इस समस्यापर भी किंचित् विचार कर लेना प्राणेश !

तुम्हारा ही

चक्रधर

अनन्त !　　　　　　　　　　　　　　　　　　दिनांक १४.९.३५

यह तुम्हारी उपासना थी या उपहास, यह तुम ही जानो, पर तुम तो कल्पनातीत हो, अत: मेरे प्रियतम ! उस दिन चौदह ग्रंथियोंके सूत्रमें तुम्हारी अनन्त विभूतिका स्वांग अवश्य ही अनुपयुक्त था । जीवनमें तुम्हारी अनुभूतिमें किंचित् क्षणोंके लिये मग्न होनेका भी अवसर आया है । वेदनाकी तरंगोंमें डूबते–उतराते हुए अचेत भी हो चुका हूँ । ठीक उसी समय तुम्हारे अनन्त रूपकी एक झाँकी मिली है । उस अनन्त भाव तथा चौदह ग्रन्थियोंके अनन्त रूपमें महान अन्तर है प्राणेश ! पर लीलामय ! विश्व कामनामय है । अभिलाषाओंकी प्रचंड आँधी सम्भवत: विश्व–निर्माणके दिनसे ही बह रही है । सुखके अस्तित्वमें ही मनुष्यकी सत्ता है, अत: इस परिस्थितिमें तुम्हारा भी सीमित हो जाना कुछ आश्चर्य नहीं । इसमें दोष भी किसीका नहीं है । तुम्हारी भुवनमोहिनी माया दुस्तर है, इतनेमें ही सबका समाधान हो जाता है । हाँ, तुमने कहा है कि तुममें लीन होकर ही इसके पार जा सकता है । देखूँ एक बार चेष्टा कर । संभव है, तुम्हारी कृपा हो और मैं भी तुममें लीन हो सकूँ ।

तुम्हारा ही

दिनांक २६.९.३५

कर्णधार !

तरी उधर ही घुमा दी, जिधर तुम चाहते थे। प्रियतम ! यह बात नहीं कि दुस्तर पथका ज्ञान खो बैठा हूँ। वह और भी प्रत्यक्ष हो गया है। अनन्त ! क्षितिजके पास उस प्रपातका आभास पा चुका हूँ। अतीत इतिहासमें न जाने कितनी तरी अबतक प्रचण्डतामें अन्तर्हित हो चुकी हैं, यह तनिक भी न भूला हूँ। फिर भी उसी ओर खे रहा हूँ, क्यों कि जानता हूँ कि तुम खेने आओगे ही। संभव है विश्वरूप ! तुम कहोगे कि तुम्हें विश्राम चाहिए। विश्व तरीको अविराम गतिसे खेते–खेते क्लांत हो जाना अस्वाभाविक नहीं, अत: यदि तुम्हें इस तरीका दायित्व लेनेमें असुविधा हो तो अपनी तरीपर बुला लेना। जितना अधिक तुम्हारे निकट रहूँगा, उतनी अधिक सहायता तुम्हारी करूँगा, अन्तर्यामिन् ! तरीका निर्माण तुमने किया था, अत: तुम्हें पूर्ण अधिकार है इसे नष्ट कर देनेका, किन्तु प्रियतम ! यदि सम्भव हो और तुम्हें कष्ट न हो तो तरी अयोग्य थी, यह कलंक मत आने देना।

एक बात और है। उज्जवल आकाश, सम्भव है, शीघ्र ही मेघसे काला हो जायगा और प्रचण्ड आँधी उठेगी।

अभेद्य अंधकार पथको और भी भयानक बना देगा । चारों ओर भँवर लोलुप दृष्टिसे तरीको गोदमें ले लेना चाहते हैं । इन्हींके बीचसे तरी द्रुत वेगसे अग्रसर होने जा रही है, अत: यात्राके प्रारंभमें, तुम्हारा नाविक तुम्हारी तरी समेत अपनेको तुमपर उत्सर्ग कर दे रहा है । उत्सर्गको स्वीकार कर लेना, प्रेममय ! नाविक तथा भँवरमें भीषण संग्राम अवश्यम्भावी है, पर तुम्हारे अनन्त प्रेमका पाल लगाकर नाविक इसे तुम्हारे पास पहुँचा भी देगा अवश्य, मेरे हृदयधन !

तुम्हारा ही



दिनांक १४.१०.३५

विश्वमय !

सम्भव है, तुम्हारी अगम्य इच्छाकी प्रचण्ड आँधीमें उड़ते हुए प्रलापके भारसे दबे ये पृष्ठ संसारके किंचित् भावुकोंके आगे जा गिरे तथा हमारे–तुम्हारे बीचके संबंधके विषयमें एक महान भ्रमकी सृष्टि करें, अतः उस भयका निवारण कर देना आवश्यक है प्रेममय ! भावमय ! भावोंके आवेशमें अबतक मैंने तुम्हें अनेक नामोंसे पुकारा है । प्रत्येकमें विशेषता है, किन्तु उसका लक्ष्य सबसे सम्भव नहीं है । मैं तुम्हें अपनेसे अलग एक भिन्न पदार्थकी तरह मानता हूँ, यह भ्रम हो ही जा सकता है । 'मैं' और 'तुम' ये ही भिन्नता के द्योतक हैं, फिर भ्रम होना आश्चर्य नहीं, पर वस्तुतः 'मैं' 'तुम' में अन्तर नहीं है । प्रदीपके जलते ही 'मैं' 'तुम' हो जाता है और 'तुम' 'मैं' में परिणत हो जाता है । प्रदीपकी उपयोगिताके लिये 'मैं' का होना आवश्यक है । एकके बिना दूसरेका आभास मात्र भी संभव नहीं है । 'मैं' का अनेक रूप है, अतः 'तुम' का अनेक रूप असम्भव नहीं । 'मैं' और 'तुम' एक दूसरेमें व्याप्त हैं; इसलिये उनके रूप भी उसी तरह एक दूसरेमें लीन हैं । इस सिद्धान्तके आधारपर ही हमारे तुम्हारे बीचके सम्बन्धकी विवेचना होनी चाहिये ।

तुम्हारा ही

# जीवन-यात्रा

| | |
|---|---|
| आविर्भाव : | सं. १९६९ वि. पौष शुक्ल ९ गुरुवार, तदनुसार १६ जनवरी १९१३ |
| स्थान : | ग्राम फखरपुर, जनपद जहानाबाद, बिहार |
| शिक्षा : | राजकीय विद्यालय, गया एवं रिपन कॉलेज, कलकत्ता |
| क्रान्तिकारी जीवन : | १९२८ में प्रथम जेल यात्रा। १९३० में द्वितीय जेल यात्रा। |
| दैनन्दिनी लेखन : | १.१.१९३४ से १४.१०.१९३५ तक। |
| संयास : | शरदपूर्णिमा, १२ अक्टूबर १९३५ |
| गीतावाटिका आगमन : | २६ अक्टूबर १९३६ |
| भगवान श्रीकृष्णका साक्षात्कार : | नवम्बर १९३६ |
| पूज्य श्रीभाईजीके साथ नित्यसान्निध्य - संकल्प : | ११ मई १९३९ |
| भगवती त्रिपुरसुन्दरीका दर्शन : | १९५१ अक्षय तृतीया |
| श्रीराधाभावमें प्रतिष्ठा : | ९ अप्रैल १९५७ |
| तिरोभाव : | १३ अक्टूबर १९९२, (गीतावाटिका, गोरखपुर) |
| कृतियाँ : | श्रीकृष्ण लीला चिन्तन, सत्संग-सुधा, प्रेम सत्संग सुधा-माला, चलौ री आज ब्रजराज मुख निरखिये, ब्रजलीलामें गाय, जगज्जननी श्रीराधा, केलि कुञ्ज, ब्रजलीलाके प्रमुख नारी पात्र, 'जय जय प्रियतम' रस काव्य, प्रस्तुत पुस्तक-'अन्तर्वेदना' एवं प्रचुर अप्रकाशित गद्य-पद्यात्मक साहित्य। |
| संकल्प सिद्ध कार्य : | हनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समिति द्वारा संचालित –<br>• हनुमानप्रसाद पोद्दार कैंसर अस्पताल एवं शोध संस्थान,<br>• श्रीराधाकृष्ण साधना केन्द्र, गोरखपुर<br>• श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार प्राच्य शोध संस्थान |

५-९-३८

करुणामय

किन भावों को लेकर तुम्हारी अर्चना करूं! अशांत हृदय में भाव कहां? बहादो शांति की धारा मेरे हृदय में। दुःख से कातर हृदय में शांति का संचार कर दो।

करुणानिधि

डूब रहा हूं। किनारा नहीं देख पड़ रहे भगवन! तृष्णा की आग अगाध अर्णव में पड़ा लहरों की थपेड़ों का सामना कर रहा हूं। कितना धक्का सहूंगा। भगवन् देखो मेरी दीनावस्था। दयालु, अपनी करुणा की कोर करके नाव लगा दो और किनारे, बेड़ा किनारे तक। तुम्हारे सिवा मेरा और कोई नहीं है।

अज्ञान के अंधकार में पड़ा हूं। तुम्हारी ज्योति का सहारा मैंने आज तक लिया नहीं, पर असहाय, अंत में कातर होकर आ पड़ा हूं तुम्हारी शरण में। ले लो अपने चरणों में।

चक्रधर